आत्मधर्म

मासिक : वर्ष-१८ * अंक-७ * मार्च-२०२४

धर्मरत्न भगवती पूज्य बहिनश्री चंपाबेनका

१२ वाँ

सम्यक्त्वजयंती महोत्सव

ता. ३१-३-२०२४,
रविवार
से
ता. ४-४-२०२४,
गुरुवार

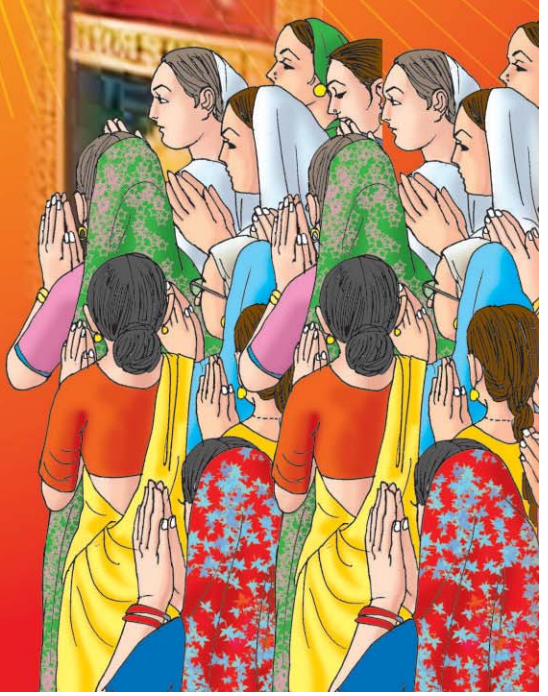

आगम महासागरके अमूल्य रत्न

• जिस मुनिने इस अपवित्र शरीरसे अपने आत्माको भिन्न ज्ञायक स्वरूप जाना, उसने सर्वशास्त्रोंको जाना।२०। (श्री स्वामीकार्तिकेयानुप्रेक्षा, गाथा-४६३)

• प्रथम तो मैं स्वभावसे ज्ञायक ही हूँ, केवल ज्ञायक होनेसे मेरा विश्वके (समस्त पदार्थोंके) साथ भी सहज ज्ञेयज्ञायक लक्षण सम्बन्ध ही है, परन्तु दूसरे स्व-स्वामीके लक्षण सम्बन्धी नहीं हैं, इसलिये मेरा किसी के साथ ममत्व नहीं, सर्वत्र निर्ममत्व ही है।२१।

(श्री अमृतचंद्राचार्य, प्रवचनसार-टीका, गाथा-२००)

• जीव भिन्न है और पुद्गल भिन्न है, बस इतना ही तत्त्व कथनका सार है। (इसके अलावा) अन्य जो कुछ भी कहा जाता है वह उसका ही विस्तार है।२२।

(श्री पूज्यपादस्वामी, इष्टोपदेश, गाथा-५०)

• हे जीव! मैं अकिंचन हूँ अर्थात् मेरा कुछ भी नहीं, ऐसी सम्यक् भावनापूर्वक तू निरंतर कर कारण कि इसी भावनाके सतत् चिंतवनसे तू त्रैलोक्यका स्वामी होगा। यह बात मात्र योगीश्वर ही जानते हैं। वह योगीश्वरोंको गम्य ऐसा परमात्मतत्त्वका रहस्य मैंने तुझे संक्षेपमें कहा।२३। (श्री गुणभद्र आचार्य, आत्मानुशासन, श्लोक-११)

• आत्माको एकरूप ही श्रद्धान करना अथवा एकरूप ही जानना चाहिए तथा एक में ही विश्राम लेना चाहिये। निर्बल-सबलका विकल्प नहीं करना चाहिये। इसमें ही सर्वसिद्धि है, दूसरा उपाय नहीं है।२४।(श्री बनारसीदासजी, नाटक समयसार, जीवद्वार पद-२०)

• सिद्धगतिमें जैसे सर्व मलरहित ज्ञानस्वरूपी सिद्ध भगवान विराजमान हैं वैसे ही देहके अंदर विराजमान परमब्रह्मस्वरूप अपना आत्मा जानना चाहिये।२५।

(श्री देवसेन आचार्य, तत्त्वसार, गाथा-२६)

• हे देव! तू देवका आराधन करता है परन्तु तेरा परमेश्वर कहाँ चला गया? जो शिव कल्याणरूप परमेश्वर सर्वांगमें विराज रहा है उसको तू क्यों भूल गया है।२६।

(श्री मुनिवर रामसिंह, पाहुड दोहा, गाथा-५०)

• भले ही ११ अंग तकका शास्त्र हमेशा पढ़ा करे, परन्तु जो आत्मतत्त्वका बोध नहीं करता तथा जिनदेव समान निजाकारको अपनेमें नहीं देखता, वह जीव कल्याण प्राप्तिके योग्य नहीं है।२७। (श्री नेमिश्वर-वचनामृत शतक, श्लोक-५२)

वर्ष-18
अंक-7

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्ग दर्शानेवाली मासिक पत्रिका

वि. संवत 2080
March
A.D. 2024

पूज्य बहिनश्री चंपाबेनकी ९२ वीं सम्यक्त्वजयंती अवसर पर वचनामृतमेंसे चुने हुए बोल

✍ शुद्ध द्रव्य पर दृष्टि देनेसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान प्रगट होते हैं। वे न प्रगटें तब तक और बादमें भी देव-शास्त्र-गुरुकी महिमा, स्वाध्याय आदि साधन होते हैं। बाकी तो, जो जिसमें हो उसमेंसे वह आता है, जो जिसमें न हो वह उसमेंसे नहीं आता। अखण्ड द्रव्यके आश्रयसे सब प्रगट होता है। देव-गुरु मार्ग बतलाते हैं, परन्तु सम्यग्दर्शन कोई दे नहीं देता।।१।।

✍ सम्यग्दृष्टिको आत्माके सिवा बाहर कहीं अच्छा नहीं लगता, जगतकी कोई वस्तु सुन्दर नहीं लगती। जिसे चैतन्यकी महिमा एवं रस लगा है उसको बाह्य विषयोंका रस टूट गया है, कोई पदार्थ सुन्दर या अच्छा नहीं लगता। अनादि अभ्यासके कारण, अस्थिरताके कारण अन्दर स्वरूपमें नहीं रहा जा सकता इसलिये उपयोग बाहर आता है परन्तु रसके बिना—सब निःसार, छिलकोंके समान, रस-कस शून्य हो ऐसे भावसे—बाहर खड़े हैं।।२।।

✍ सम्यग्दृष्टिको ऐसा निःशंक गुण होता है कि चौदह ब्रह्माण्ड उलट जायँ तथापि अनुभवमें शंका नहीं होती।।३।।

✍ ज्ञानीको दृष्टि द्रव्यसामान्य पर ही स्थिर रहती है, भेदज्ञानकी धारा सतत बहती है।।४।।

✍ शाश्वत शुद्धिधाम ऐसा जो बलवान आत्मद्रव्य, उसकी दृष्टि प्रगट हुई तो शुद्ध पर्याय प्रगट होती ही है। विकल्पके भेदसे शुद्ध पर्याय प्रगट नहीं होती। एकको ग्रहण

किया उसमें सब आ जाता है। दृष्टिके साथ रहा हुआ सम्यग्ज्ञान विवेक करता है।।५।।

✍ सम्यक्त्वसे पूर्व भी विचार द्वारा निर्णय हो सकता है, 'यह आत्मा' ऐसा पक्का निर्णय होता है। भले अभी अनुभूति नहीं हुई हो तथापि पहले विकल्प सहित निर्णय होता तो है।।६।।

✍ द्रव्य सदा निर्लेप है। स्वयं ज्ञाता भिन्न ही तैरता है। जिस प्रकार स्फटिकमें प्रतिबिम्ब दिखने पर भी स्फटिक निर्मल है, उसी प्रकार जीवमें विभाव ज्ञात होने पर भी जीव निर्मल है—निर्लेप है। ज्ञायकरूप परिणमित होने पर पर्यायमें निर्लेपता होती है। 'ये सब जो कषाय—विभाव ज्ञात होते हैं वे ज्ञेय हैं, मैं तो ज्ञायक हूँ' ऐसा पहिचाने—परिणमन करे तो प्रगट निर्लेपता होती है।।७।।

✍ यदि वर्तमानमें ही चैतन्यमें सम्पूर्णरूपसे स्थिर हुआ जा सकता हो तो दूसरा कुछ नहीं चाहिये ऐसी भावना सम्यग्दृष्टिके होती है।।८।।

✍ जीव ज्ञायकके लक्षसे श्रवण करे, चिंतवन करे, मंथन करे उसे—भले कदाचित् सम्यग्दर्शन न हो तथापि—सम्यक्त्वसन्मुखता होती है। अन्दर दृढ़ संस्कार डाले, उपयोग एक विषयमें न टिके तो अन्यमें बदले, उपयोग सूक्ष्मसे सूक्ष्म करे, उपयोगमें सूक्ष्मता करते करते, चैतन्यतत्त्वको ग्रहण करते हुए आगे बढ़े, वह जीव क्रमसे सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है।।९।।

✍ सम्यग्दृष्टि जीव ज्ञायकको ज्ञायक द्वारा ही अपनेमें धारण कर रखता है, टिकाए रखता है, स्थिर रखता है—ऐसी सहज दशा होती है।

सम्यग्दृष्टि जीवको तथा मुनिको भेदज्ञानकी परिणति तो चलती ही रहती है। सम्यग्दृष्टि गृहस्थको उसकी दशाके अनुसार उपयोग अंतरमें जाता है और बाहर आता है; मुनिराजको तो उपयोग अति शीघ्रतासे बारम्बार अंतरमें उतर जाता है। भेद-ज्ञानकी परिणति—ज्ञातृत्वधारा—दोनोंके चलती ही रहती है। उन्हें भेदज्ञान प्रगट हुआ तबसे कोई काल पुरुषार्थ रहित नहीं होता। अविरत सम्यग्दृष्टिको चौथे गुणस्थानके अनुसार और मुनिको छठवें-सातवें गुणस्थानके अनुसार पुरुषार्थ वर्तता रहता है। पुरुषार्थके बिना कहीं परिणति स्थिर नहीं रहती। सहज भी है, पुरुषार्थ भी है।।१०।।

✍ जिसे द्रव्यदृष्टि प्रगट हुई उसकी दृष्टि अब चैतन्यके तल पर ही लगी है। उसमें परिणति एकमेक हो गई है। चैतन्य-तलमें ही सहज दृष्टि है। स्वानुभूतिके कालमें या बाहर उपयोग हो तब भी तल परसे दृष्टि नहीं हटती, दृष्टि बाहर जाती ही

नहीं। ज्ञानी चैतन्यके पातालमें पहुँच गये हैं; गहरी-गहरी गुफामें, बहुत गहराई तक पहुँच गये हैं; साधनाकी सहज दशा साधी हुई है।।११।।

✍ ज्ञानीको दृष्टि-अपेक्षासे चैतन्य एवं रागकी अत्यन्त भिन्नता भासती है, यद्यपि वे ज्ञानमें जानते हैं कि राग चैतन्यकी पर्यायमें होता है।।१२।।

✍ सम्यग्दर्शन होते ही जीव चैतन्यमहलका स्वामी बन गया। तीव्र पुरुषार्थीको महलका अस्थिरतारूप कचरा निकालनेमें कम समय लगता है, मन्द पुरुषार्थीको अधिक समय लगता है; परन्तु दोनों अल्प-अधिक समयमें सब कचरा निकालकर केवल-ज्ञान अवश्य प्राप्त करेंगे ही।।१३।।

✍ जिसने भेदज्ञानकी विशेषता की है उसे चाहे जैसे परिषहमें आत्मा ही विशेष लगता है।।१४।।

✍ शुद्धनयकी अनुभूति अर्थात् शुद्धनयके विषयभूत अबद्धस्पृष्टादिरूप शुद्ध आत्माकी अनुभूति सो सम्पूर्ण जिनशासनकी अनुभूति है। चौदह ब्रह्माण्डके भाव उसमें आ गये। मोक्षमार्ग, केवलज्ञान, मोक्ष इत्यादि सब जान लिया। 'सर्वगुणांश सो सम्यक्त्व'—अनंत गुणोंका अंश प्रगट हुआ; समस्त लोका-लोकका स्वरूप ज्ञात हो गया।

जिस मार्गसे यह सम्यक्त्व हुआ उसी मार्गसे मुनिपना और केवलज्ञान होगा—ऐसा ज्ञात हो गया। पूर्णताके लक्षसे प्रारंभ हुआ; इसी मार्गसे देशविरतिपना, मुनिपना, पूर्ण चारित्र एवं केवल-ज्ञान—सब प्रगट होगा।

नमूना देखनेसे पूरे मालका पता चल जाता है। दूजके चन्द्रकी कला द्वारा पूरे चन्द्रका ख्याल आ जाता है। गुड़की एक डलीमें पूरी गुड़की पारीका पता लग जाता है। वहाँ (दृष्टान्तमें) तो भिन्न-भिन्न द्रव्य हैं और यह तो एक ही द्रव्य है। इसलिये सम्यक्त्वमें चौदह ब्रह्माण्डके भाव आ गये। इसी मार्गसे केवलज्ञान होगा। जिस प्रकार अंश प्रगट हुआ उसी प्रकार पूर्णता प्रगट होगी। इसलिये शुद्धनयकी अनुभूति अर्थात् शुद्ध आत्माकी अनुभूति वह सम्पूर्ण जिनशासनकी अनुभूति है।।१५।।

✍ निरालम्ब चलना वह वस्तुका स्वभाव है। तू किसीके आश्रय बिना चैतन्यमें चला जा। आत्मा सदा अकेला ही है, आप स्वयंभू है। मुनियोंके मनकी गति निरालम्ब है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्रकी निरालम्बी चाल प्रगट हुई उसे कोई रोकनेवाला नहीं है।।१६।।

✍ निर्विकल्प दशामें 'यह ध्यान है, यह ध्येय है' ऐसे विकल्प टूट चुकते हैं।

यद्यपि ज्ञानीको सविकल्प दशामें भी दृष्टि तो परमात्मतत्त्व पर ही होती है, तथापि पंच परमेष्ठी, ध्याता-ध्यान-ध्येय इत्यादि सम्बन्धी विकल्प भी होते हैं; परन्तु निर्विकल्प स्वानुभूति होने पर विकल्पजाल टूट जाता है, शुभाशुभ विकल्प नहीं रहते। उग्र निर्विकल्प दशामें ही मुक्ति है।—ऐसा मार्ग है।।१७।।

✍ पूज्य गुरुदेवकी वाणी मिले वह एक अनुपम सौभाग्य है। मार्ग बतलानेवाले गुरु मिले और उनकी वाणी सुननेको मिली वह मुमुक्षुओंका परम सौभाग्य है। प्रतिदिन प्रातः-मध्याह्न दो बार ऐसा उत्तम सम्यक्-तत्त्व सुननेको मिलता है इस जैसा दूसरा कौनसा सद्भाग्य होगा ? श्रोताको अपूर्वता लगे और पुरुषार्थ करे तो वह आत्माके समीप आ जाय और जन्म-मरण टल जाय—ऐसी अद्भुत वाणी है। ऐसा जो श्रवणका सौभाग्य प्राप्त हुआ है वह मुमुक्षु जीवोंको सफल कर लेने योग्य है। पंचम कालमें निरंतर अमृतझरती गुरुदेवकी वाणी भगवानका विरह भुलाती है !।।१८।।

✍ सम्यग्दृष्टिको ज्ञान-वैराग्यकी ऐसी शक्ति प्रगट हुई है कि गृहस्थाश्रममें होने पर भी, सभी कार्योंमें स्थित होने पर भी, लेप नहीं लगता, निर्लेप रहते हैं; ज्ञानधारा एवं उदयधारा दोनों भिन्न परिणमती हैं; अल्प अस्थिरता है वह अपने पुरुषार्थकी कमज़ोरीसे होती है, उसके भी ज्ञाता रहते हैं।।१९।।

✍ तीर्थंकरभगवन्तों द्वारा प्रकाशित दिगम्बर जैन धर्म ही सत्य है ऐसा गुरुदेवने युक्ति-न्यायसे सर्व प्रकार स्पष्टरूपसे समझाया है। मार्गकी खूब छानबीन की है। द्रव्यकी स्वतंत्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, आत्माका शुद्ध स्वरूप, सम्यग्दर्शन, स्वानुभूति, मोक्षमार्ग इत्यादि सब कुछ उनके परम प्रतापसे इस काल सत्यरूपसे बाहर आया है। गुरुदेवकी श्रुतकी धारा कोई और ही है। उन्होंने हमें तरनेका मार्ग बतलाया है। प्रवचनमें कितना मथ-मथकर निकालते हैं ! उनके प्रतापसे सारे भारतमें बहुत जीव मोक्षमार्गको समझनेका प्रयत्न कर रहे हैं। पंचम कालमें ऐसा सुयोग प्राप्त हुआ वह अपना परम सद्भाग्य है। जीवनमें सब उपकार गुरुदेवका ही है। गुरुदेव गुणोंसे भरपूर हैं, महिमावन्त हैं। उनके चरणकमलकी सेवा हृदयमें बसी रहे।।२०।।

✍ सम्यग्दृष्टिको अखण्ड तत्त्वका आश्रय है, अखण्ड परसे दृष्टि छूट जाये तो साधकपना ही न रहे। दृष्टि तो अंतरमें है। चारित्रमें अपूर्णता है। वह बाहर खड़ा दिखायी दे परन्तु दृष्टि तो स्वमें ही है।।२१।।

श्री समयसारजी शास्त्र पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

(समयसार गाथा–३२०)(गतांकसे आगे)

द्रव्यसे निरपेक्षरूप पर्यायका स्वतंत्र परिणमन

शुद्धोपयोग–आनंदकी दशाका वेदन वह कोई भी अपेक्षासे अर्थात् कि वह त्रिकाल विद्यमान नहीं है इस अपेक्षासे शुद्ध पारिणामिकभावसे भिन्न है। संवर अधिकारमें कहा है कि पुण्य–पापके भाव अर्थात् कि व्यवहाररत्नत्रयका जितना भाव है वह आत्माके क्षेत्रसे भिन्न है, भाव तो भिन्न है लेकिन उसके प्रदेश भी भिन्न हैं, क्योंकि प्रभु आनंदका घन है, उसमें विकार उत्पन्न होता नहीं है इसलिये उसका क्षेत्र त्रिकालीके क्षेत्रसे भिन्न है। असंख्य–प्रदेशी प्रभुमें जो दया–दानके विकल्प उत्पन्न होते है वे स्वभावसे तो भिन्न है, लेकिन वह क्षेत्रसे भी भिन्न है। चिद्विलासमें तो ऐसा कहा है कि पर्याय–पर्यायसे है, द्रव्यसे नहीं, मोक्षका मार्ग है वह पर्याय है। उस पर्यायका कर्ता पर्याय, पर्यायका साधन पर्याय, पर्यायका कार्य पर्याय, पर्यायका दान दिया वह पर्याय, पर्यायमेंसे पर्याय हुई और पर्यायके आधारसे पर्याय हुई, द्रव्यके कारणसे पर्याय हुई नहीं है।

क्षणिक पर्यायसे कथंचित् भिन्न त्रिकाल विद्यमान ध्रुवतत्त्व

यहाँ तो कहते हैं कि आनंदका नाथ प्रभु निज परमात्मद्रव्यसे निश्चय मोक्षमार्गकी पर्याय कथंचित् भिन्न है, क्योंकि त्रिकाली तत्त्व नित्य विद्यमान तत्त्व है और वह एक समयकी पर्याय क्षणिक है। मोक्षमार्गकी जो पर्याय है वह क्षणिक संपदा है लेकिन जहाँ पूर्ण संपदा विद्यमान है ऐसे नित्यानंद प्रभु शुद्धात्मद्रव्यसे मोक्षकी पर्याय–आनंदके लाभकी पर्याय कथंचित् भिन्न है। मोक्षमार्गकी पर्यायसे मोक्ष मिले ऐसा कहना वह व्यवहार है। मोक्षकी पर्याय स्वतंत्ररूपसे स्वयं स्वयंको प्राप्त करती है, मोक्षमार्गके कारणसे मोक्षकी पर्याय हो ऐसा कहना वह व्यवहार है। मोक्षमार्गकी वह पर्याय भी द्रव्यसे कथंचित् भिन्न है।

है हेय सब बहितत्त्व ये जीवादि, आत्मा ग्राह्य है।
अरु कर्मसे उत्पन्न गुणपर्यायसे वह बाह्य है ॥३८॥

परमागम
श्री नियमसार

विषयी विषयसे कथंचित् भिन्न किसलिये ?

मोक्षके मार्गकी पर्याय कि जो अतीन्द्रिय आनंदका अपूर्व स्वाद वह पर्याय है; व्यवहार मोक्षमार्ग तो कथनमात्र है लेकिन जो यथार्थ मोक्षमार्ग अंतरमें प्रगट हुआ वह शुद्ध त्रिकाली भावसे कथंचित् भिन्न है क्योंकि मोक्षमार्गकी पर्यायका काल एक समयका है और पारिणामिकभाव त्रिकाली है। मोक्षके मार्गकी निश्चय अवस्था-वीतरागी पर्याय कि जिसके कारणसे मोक्ष होता है ऐसा कहा जाता है ऐसी पर्याय शुद्ध पारिणामिकभावलक्षण शुद्धात्मद्रव्यसे कथंचित् भिन्न है। सम्यग्दर्शनकी पर्याय भी कथंचित् भिन्न है और सम्यग्दर्शनकी पर्याय सम्यग्दर्शनका विषय नहीं है। सम्यग्दर्शनका विषय ध्रुव-भूतार्थस्वभाव है। सम्यग्दर्शन है वह विषयी है और ध्रुव त्रिकाली स्वभाव सत्यार्थ है वह विषय है, विषयी है वह विषयसे कथंचित् भिन्न है।

मोक्षमार्गकी पर्याय किसलिये भिन्न है? कथंचित् भिन्न कहते हो उसका कारण क्या ?–कि भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध चैतन्य ध्रुव वह भावरूप है और मोक्षमार्गकी पर्याय है वह भावनारूप है, मोक्षमार्गकी पर्याय त्रिकाली भावरूप नहीं है। मोक्षमार्गकी पर्याय है वह द्रव्यसे कथंचित् भिन्न क्यों है ?–कि वह भावनारूप है, वह वर्तमान भावनारूप है लेकिन त्रिकाली भावरूप नहीं है। त्रिकाली पारिणामिकको भाव कहे, पारिणामिक कहे, ध्रुव कहे, सदृश कहे और यह पर्याय है वह विसदृश है, क्योंकि उत्पन्न-व्यय-युक्त है, मोक्षका मार्ग भी उत्पाद-व्यय-युक्त है। एक समयमें उत्पन्न होता है दूसरे समय व्यय होता है। भावरूप जो त्रिकाली भगवान, उसके सन्मुख होकर प्रकट हुई दशा है वह भावनारूप है, त्रिकाली भावरूप नहीं और शुद्ध पारिणामिकभाव है वह भावनारूप नहीं है। यह जो कहा जाता है उस भाषाके भावको समझना चाहिये। शुद्ध पारिणामिकभाव है वह भावनारूप नहीं, वह वर्तमान पर्यायरूप नहीं, मोक्षके कारणरूप जो अबंध परिणाम है वह भावनारूप है और त्रिकाल शुद्ध पारिणामिक वह भावनारूप है, यह तो भाव है। राग तो कहीं दूर रह गया लेकिन मोक्षका मार्ग भावनारूप होनेसे वह शुद्ध पारिणामिकभावसे भिन्न है।

मोक्षमार्गकी पर्यायको पारिणामिकभाव अभिन्न हो तो ?

मोक्षका मार्ग वीतरागी शुद्धोपयोगी पर्याय वह जो शुद्ध पारिणामिकभावसे एकमेक

मानापमान, स्वभावके नहिं स्थान होते जीवके।
होते न हर्षस्थान भी, नहिं स्थान और अहर्षके ॥३९॥

हो तो, मोक्षका प्रसंग बनने पर–मोक्ष होने पर मोक्षमार्गकी पर्यायका विनाश होता है, यदि यह भावना–मोक्षमार्ग पारिणामिकके साथ अभिन्न होती है, एकमेक हो तो मोक्षकी पर्याय होने पर मोक्षमार्गकी पर्यायका नाश हो जाता है। उसके साथमें द्रव्यका नाश होना चाहिये। द्रव्यका नाश होने पर यदि वह पर्याय त्रिकालीसे एकमेक हो तो मोक्ष होने पर उस पर्यायका तो नाश हो जाता है। संवर, निर्जराकी पर्याय नाशवान है, केवलज्ञानकी पर्याय भी नाशवान है, क्योंकि पर्यायका काल एक समयका है, प्रथम समय जो केवलज्ञान है वह दूसरे समय नहीं रह सकता, क्योंकि वह एक समयकी अवस्थावाली है, भगवान आत्मा नित्य रहनेवाला अनादि अनंत है।

शुद्ध चैतन्य भगवान आत्माकी सन्मुखके उपयोगरूप मोक्षमार्ग भावनारूप होनेसे यदि वह चैतन्यके त्रिकाल स्वभावसे अभिन्नरूप हो तो मोक्ष होनेपर वह पर्याय नाश होता है तब शुद्ध पारिणामिक भी नाश हो जाय। मोक्षका मार्ग है वह भावनारूप है लेकिन भावरूप नहीं है, त्रिकाली भावके लक्षसे हुई वह भावना और भाव एक नहीं है, यदि वह एक हो तो भावनाका नाश होकर मोक्ष हो तब भावरूप पारिणामिक भी नाश हो जाय।

भगवान आत्मा स्वयंके स्वभावसे प्रत्यक्ष जाननेमें आये ऐसी वस्तु है लेकिन जो वस्तु जाननेमें आती है वह जाननेवाली पर्याय से कथंचित् भिन्न है। क्योंकि यदि अभिन्न हो तो वह पर्यायका नाश होने पर द्रव्यका भी नाश हो जायेगा। मोक्षके कारणरूप मोक्षमार्गकी पर्याय ऐसा यहाँ कहा है वास्तवमें तो मोक्षकी पर्याय है वह मोक्षके कारणभूत मोक्षमार्गसे प्रगट नहीं होती किन्तु उस समयकी मोक्षकी पर्याय षट्कारकके परिणमनसे स्वतंत्र उत्पन्न होती है, पूर्वकी मोक्षमार्गकी पर्यायके बलसे उत्पन्न होती है ऐसा नहीं है। लेकिन यहाँ तो द्रव्यसे कथंचित् भिन्न है यह बात समझानेकी है इसलिये मोक्षका कारण त्रिकाली द्रव्य नहीं है लेकिन मोक्षमार्गकी पर्याय है ऐसा कहा है। जो मोक्षमार्गकी पर्याय और वस्तु अभिन्न हो तो वस्तु ही न रहे, शुद्ध पारिणामिकभावका भी नाश हो जाय लेकिन ऐसा तो होता नहीं है। क्योंकि सत्पना है वह कहाँ जायेगा ? अर्थात् शुद्धपारिणाकभाव तो अविनश्वर होनेसे उसका नाश होता नहीं है और पर्यायका नाश हो जाता है इसलिये शुद्ध पर्यायसे द्रव्य कथंचित् भिन्न है। (क्रमशः)

नहिं प्रकृति स्थान-प्रदेश स्थान, न और स्थिति-बन्धस्थान नहिं।
नहिं जीवके अनुभागस्थान तथा उदयके स्थान नहिं ॥४०॥

श्री इष्टोपदेश पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

प्रवचन नं.-३२ (गाथा-२८)

मन-वचन-कायामें ममत्वसे संसार, निर्ममत्वसे मुक्ति

देखो ! यह इष्टोपदेश है। परपदार्थका सम्बन्ध छोड़कर स्वभावका सम्बन्ध करना वह आत्माको हितकर है ऐसा उपदेश वह इष्टोपदेश है और परसम्बन्धसे लाभ मानना वह अहितकर-अनिष्ट उपदेश है।

एक ओर राम और एक ओर गाँव है। एक ओर भगवान आत्मा अनंत आनंदका पिंड महापदार्थ है। उस स्वपदार्थका संग सुखदायक है। ऐसा संतोंका उपदेश वह हितकर-इष्ट उपदेश है। और परसंगसे लाभ होता है ऐसा उपदेश वह अनिष्ट उपदेश है और परसे लाभ माननेका भाव भी अहितकर है। वीतराग स्वयं ऐसा कहता है कि भाई ! हमारी ओर तुम्हारा झुकाव वह भी अहितकर है। यह तो गजब बात है न ! 'हम भी बापु ! तेरे हिसाबसे परद्रव्य है।' ऐसी बात वीतरागके अतिरिक्त अन्य कौन कह सकता है ? वीतराग कहता है भाई ! तेरा तत्त्व सबसे निराला है, द्रव्यकर्मके उदयसे मिले संयोगोंसे तेरा तत्त्व निराला है। तेरा तत्त्व तो स्वभावकी अनंती शांति सहित है–ऐसे निजतत्त्वका आश्रय करके तू उसमें मग्न हो जा। भाई ! स्वद्रव्यके आश्रयसे ही सुगति है, परद्रव्यके आश्रयसे तो दुर्गति है।

ज्ञानी जब तक स्वरूपमें ठहर न सके तब तक परसंगका शुभराग आता है, पूजा-भक्तिके भाव आते है, लेकिन वह हेय है ऐसा ज्ञानी जानते है। स्त्री, पुत्रादि परद्रव्यके लक्षसे अशुभराग होता है उससे बचने हेतु शुभराग आते है लेकिन वह हेय है, व्यवहार है, स्वदृष्टिमें-निश्चयमें तो वह व्यवहारका निषेध ही है।

भगवान आत्मा स्वयं कृपासागर है उसे अन्यकी कृपा बाह्यमेंसे लेने जाना पड़ती नहीं है। 'करुणा हम पावत है तुमकी वह बात रही सुगुरुगमकी।' अंतरमें भगवानकी जिन्हें कृपा हो गई है उसे भगवानकी कृपा हुई ऐसा कहनेमें आता है।

भगवान आत्मा मन-वचन-कायासे भिन्न है इस प्रकारका अभ्यास करनेसे मोक्षसुखकी प्राप्ति होती है और मन-वचन-कायासे आत्मा अभिन्न है ऐसे अभ्याससे दुःखरूप संसारकी प्राप्ति होती है। यह तो भाई ! शांतचित्त होकर सुनने जैसी बात है।

नहिं स्थान क्षायिकभावके, क्षायोपशमिक तथा नहीं।
नहिं स्थान उपशमभावके, होते उदयके स्थान नहिं ॥४१॥

प्रश्न :–आप कहते हो कि परद्रव्यका संग नहीं करना लेकिन हम यह दुकान लगाकर बैठे है उसका क्या करना ? लग्न किया है, पुत्रादि होते है उसका क्या करना ? सभीको उचित स्थान पर तो लगाना कि नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री :–अरे भाई ! तू तेरे मन-वचन-कायामें कुछ भी बदलाव करनेमें समर्थ नहीं है। तो परद्रव्यका कार्य करने कहाँ दौड़ा है ? प्रत्येक द्रव्यका कार्य उसमें स्वयं होता है उसका कर्ता तू नहीं है। भाई ! शरीरादि किसी परद्रव्यमें मैं कुछ कर सकता हूँ ऐसा मानना वह बड़ी भ्रमणा है।

प्रश्न :–यह भ्रमणा निकाल दे तो पैर दुःखते हो वह तो मिट जाय कि नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री :–अरे ! वह तेरी वस्तु है ही नहीं तो फिर मिटे या न मिटे उससे तेरेको क्या ? स्वयंका बंगला जल रहा हो उसे बुझाये तो तो ठीक लेकिन जंगलमें खाली झोपड़ी पड़ी हो वह जल रही हो उसे बुझाये तो तुझे क्या मतलब है ? उसी प्रकार आत्मा बिनाके खाली झोपड़ी जैसे जड़ शरीरमें कोई रोग हो तो उसे दूर करनेसे आत्माको क्या लाभ ? आत्माको शरीर ही नहीं, रोग ही नहीं, फिर दुःख किस बातका ? आत्माका दुःख तो वह रोग और शरीरमें सम्बन्ध मानना जैसा है। श्लोकमें एकदम सार कह दिया है कि 'मन-वचन-काया' मेरे है ऐसे अभ्याससे संसार है और 'मन-वचन-काया' मेरे नहीं ऐसे अभ्याससे मोक्ष है। अब तुझे ठीक लगे ऐसा कर !

भेदविज्ञानका महा प्रताप

यह श्री इष्टोपदेश शास्त्र चलता है। पूज्यपादस्वामीने उसकी रचना की है। उसमें २८वीं गाथा चलती है।

'इस संसारमें देहादिके संयोगसे प्राणीओंको दुःख-समूह भुगतना पड़ता है। इसलिये मन-वचन-कायासे होनेवाले सर्व सम्बन्धको मैं छोड़ता हूँ।'

जब तक जीव शरीर, वाणी एवं मन मेरे हैं–ऐसा मानता है वहाँ तक संसार है और जब तक 'वे मेरे नहीं है' ऐसी बुद्धि करता है तब मुक्ति होती है।

भगवान आत्मा ज्ञानानंद, सहजानंद, अमूर्त, शुद्ध चैतन्यमूर्ति हूँ। उसे छोड़कर मन, वाणी और देह वह मेरे हैं अथवा वे मेरी वस्तु है। उससे मैं काम ले सकता हूँ ऐसी मान्यता है तब तक मिथ्यादर्शन और संसार है।

चतु-गतिभ्रमण नहिं, जन्म-मृत्यु न, रोग शोक जरा नहीं।
कुल योनि नहिं, नहिं जीवस्थान, रु मार्गणाके स्थान नहिं ॥४२॥

भगवान आत्मा सत्चिदानंद शुद्ध ज्ञायकज्योत स्वरूप है। उसका स्वयंका अस्तित्व शुद्ध और पवित्र है ऐसी अंतर्दृष्टि करना उसका नाम सम्यग्दर्शन–प्रथम धर्म है, उससे विरुद्ध शरीर मेरा है, मनसे मुझे ज्ञान होता है, वाणीसे मैं बोलता हूँ–अन्यको समझाता हूँ ऐसा शरीर-वाणी-मनमें स्वयंका अस्तित्व मानता है। तब तक उसको मिथ्यादर्शन-संसार है।

स्वयंके क्षेत्रसे बाह्यकी वस्तुसे तो आत्मा भिन्न ही है। लेकिन एक क्षेत्रमें रहा शरीर-वाणी-मनसे भी आत्मा भिन्न है। आत्मा तो ज्ञानानंद महासत्ता है। महान पदार्थ है जिसमें अनंत ज्ञान, दर्शन, आनंद आदि अनंत गुण विद्यमान है। ऐसे निज अस्तित्वमें दृष्टि रखनेवाला धर्मी जीव शरीर-वाणी-मनकी क्रिया मेरी है, मुझसे होती है ऐसा मानते नहीं है और ऐसी दृष्टि रहित अज्ञानी जीव शरीर, वाणी, मनकी क्रिया वह मेरी है ऐसा मानता है वह संसारमें भटकता है।

प्रश्न : तो हमें बोलना या नहीं बोलना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : बोलता है ही कौन ? और मौन कौन रहता है ? भाषा ही आत्माकी नहीं वहाँ आत्मा बोले कहाँसे और मौन कहाँसे रहे ? मन, वाणी आदि जड़ पुद्गलका अस्तित्व है वह भी उसमें है। उसका अस्तित्व आत्मामें नहीं है।

मन-वचन-कायाके अस्तित्वमें मैं नहीं हूँ। उसकी क्रिया मेरी नहीं। पुण्य-पाप, संकल्प-विकल्प आदि मनकी क्रिया, वाणी तथा शरीरकी हलन-चलनकी क्रिया वह मेरा स्वभाव नहीं, मेरा कार्य नहीं, मैं तो शुद्ध चिदानंदस्वरूप ज्ञायक हूँ ऐसी अंतरदृष्टि करना और राग तथा देहसे भिन्न स्वयंका अनुभव करना वह ही सम्यग्दर्शन और मोक्षमार्ग है।

एकबार ढेबरभाईने प्रश्न किया कि शरीरका सद्उपयोग किस प्रकार करना ? उन्हें कहा कि, शरीर तो जड़ माटी-धूल है उसका उपयोग आत्मा कर सकता नहीं। शरीर परद्रव्य है उसकी क्रिया आत्मा कर सकता नहीं। शरीरकी क्रिया प्रत्येक रजकणके द्रव्य-गुणके कारणसे होती है। आत्मा है तो शरीर चलता है, आत्मा है तो वाणी बोलता है ऐसा तीनकाल, तीनलोकमें कदापि होता नहीं है। शरीर-वाणी-मनका स्वयंका अस्तित्व है उसके उसका कार्य होता है। जैसे श्रीफलमें सफेद मीठा गोला, छिलके और लाल छालसे पृथक् होता है वैसे आत्मा शरीररूप छिलका जड़कर्मरूप केचुली और पुण्य-पापके भावरूप लाल-छिलकेसे पृथक् ज्ञानानंद स्वरूप सत् चिदानंद-आनंदकंद प्रभु है लेकिन इस जीवने कदापि उस ओर दृष्टि की नहीं है। स्वयंके स्वभावसे हटकर शरीर, वाणी, मनसे मैं काम लेता हूँ और वह मेरे है ऐसा मानता है उसका ही नाम मिथ्यादर्शन-संसार है। (क्रमशः) ✻

अध्यात्म संदेश

(रहस्यपूर्ण चिट्ठी पर परम पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन)

मंगल उपोद्घात

चिदानंदघनके अनुभव द्वारा सहजानंदकी वृद्धि चाहता हूँ।

श्री

सिद्ध श्री मुलताननगर महा शुभस्थान में साधर्मी भाई अनेक उपमा योग्य अध्यात्मरस रोचक भाई श्री खानचंदजी, गंगाधरजी, श्रीपालजी, सिद्धारथदासजी, अन्य सर्व साधर्मी योग्य लिखी टोडरमलके श्री प्रमुख विनय शब्द अवधारण करना। यहाँ यथासम्भव आनंद है, तुम्हारे चिदानंदघनके अनुभव से सहजानंद की वृद्धि चाहिये।

पंडित श्री टोडरमलजी ने आजसे करीब २०० वर्ष पूर्व (सं. १८११ फागुन मास-गुजराती माघ महिनेकी कृष्ण पंचमीके दिन) साधर्मी भाईयोंके ऊपर एक अध्यात्मरसपूर्ण पत्र लिखा था, उसमें सविकल्प-निर्विकल्पदशा एवं सम्यग्दर्शन तथा स्वानुभवमें प्रत्यक्ष-परोक्षपना इत्यादिसे सम्बन्धित अध्यात्मिक रससभर चर्चा की है। वह चिठ्ठी बहुत ही सरस है, अतः प्रवचनमें ली जा रही है। एक धर्मी गृहस्थ दूसरे साधर्मियोंके ऊपर कैसा पत्र लिखते हैं और स्वानुभव सम्बन्धमें कैसी चर्चा करते हैं—यह बात इस पत्र परसे देखनेको मिल रही है।

मांगलिकमें 'श्री' अर्थात् सिद्धस्वरूप जो आत्मलक्ष्मी है उसका सबसे पहले स्मरण करके प्रारंभ करते हैं। साधर्मियोंके लिये 'अध्यात्मरसरोचक' विशेषणका प्रयोग करके कितना सुंदर संबोधन किया है। साधर्मीके प्रति कैसा विनय-सत्कार है। पुनःश्च लिखते हैं कि हमें यथासंभव आनन्द है, और आपको चिदानंदघनके अनुभव द्वारा सहजानंदकी वृद्धि चाहता हूँ। वाह ! देखो, यह साधर्मीकी एक दूसरोंके प्रति भावना ! धर्मीको दूसरे साधर्मीके प्रति धर्मका प्रमोद आता है, इसलिये लिखते हैं कि आपको चिदानंदके अनुभवसे सहजानंदकी वृद्धि हो। स्वयंको अंतरमें चिदानंदका अनुभव जच रहा है इसलिये दूसरोंके लिये भी उसकी भावना भाते हैं। पत्रकी शुरूआत ही ऐसी है कि पढ़ते ही समझमें आ जाय कि यह कोई लौकिक

निर्दंड अरु निर्द्वंद, निर्मम, निःशरीर, निराग है।
निर्मूढ़, निर्भय, निरवलंबन, आतमा निर्दोष है ॥४३॥

पत्र नहीं है यह तो लोकोत्तर पत्र है। यह चिट्ठी पढी तब (गुरुदेवको) ऐसा लगा था कि इसमें तो हीरे भरे हैं। उस समय तो ऐसी छपी हुई चिट्ठी भी बड़ी मुश्किलसे मिल पाती थी, आजकल तो हजारों प्रत (नकल-कॉपी) प्रकाशित हो चुकी हैं।

सं. १८११में इस चिट्ठीको लिखनेवाले पंडित टोडरमलजी गृहस्थ थे, फिर भी स्वानुभव इत्यादिकी चर्चा उन्होंने कितने प्रेमसे की है। उनका शास्त्र अभ्यास भी बहुत था। टीका सहित श्री समयसार, पंचास्तिकाय, प्रवचनसार, नियमसार, अष्टपाहुड, पुरुषार्थसिद्धिउपाय एवं गोम्मटसार इत्यादि अनेक शास्त्रोंका उनको गहन अभ्यास था और उसको दोहन करके उन्होंने मोक्षमार्ग प्रकाश ग्रंथकी रचना की, उसमें तत्त्व संबंधित बहुत खुलासा एकदम स्पष्ट करके दिया है। 'गोम्मटसार' जैसे महान ग्रंथ की संस्कृत टीका के हिन्दी अर्थ उन्होंने लिखे हैं। साधर्मीके ऊपर उनकी लिखी हुई इस चिट्ठीमें अध्यात्मके गंभीर भाव भरे हैं, पहलेके गृहस्थ भी अध्यात्मरस के कैसे रसिकजन थे यह बात इसे चिट्ठीकी लिखाईमें दिख रही है। कुटुम्ब एवं धंधा-व्यापारके बीच रहते हुए भी निवृत्ति लेकर अंतरमें आत्माके स्वानुभव इत्यादिकी चर्चा-विचारणा करते थे। चिट्ठीमें लिख रहे है कि चिदानंदघनके अनुभव द्वारा आपको सहजानंदकी वृद्धि चाहता हूँ। अर्थात् सहजानंद तो चैतन्यके अनुभवमें ही है; और उसकी ही चाहना है। उसके अलावा अन्य कोई भी चाहना हमें और आपको न हो। संसारके सुखकी वृद्धि नहीं चाहते हैं, परन्तु चैतन्यके स्वानुभवसे हो रहा सहज अतीन्द्रिय सुख, उसकी ही वृद्धी की भावना है। स्वयंको जिसकी रुचि है उसीकी वृद्धिकी भावना सामनेवालामें भी भाते हैं। यह चिट्ठी-लिखनेवाले पंडित टोडरमलजी लगभग २८ वर्षकी उम्रमें तो स्वर्गवासी हुए हैं; २८ वर्ष तो छोटी उम्र मानी जाती है। इतनी छोटी उम्रमें भी कितने सारे शास्त्रोंका अभ्यास और स्वानुभवकी चर्चा कितनी सुंदर की है। 'श्रीमद् राजचंद्र इत्यादिने भी देखो न, छोटी-छोटी उम्रमें आत्माका कैसा काम किया है। अंदरसे आत्माका प्रेम जाग जाना चाहिये। जिसे अध्यात्मका कुछ रस हो और अपना आत्मकल्याण कर लेनेकी धगश (झंखना) हो ऐसे जीवको यह बात रुचिमें जचे ऐसी है। हालाँकि ऐसे अध्यात्मरसिक जीव विरले ही होते हैं, परन्तु खुद इन विरलोंकी बिरादरीमें मिल जाना। अध्यात्मकी ऐसी चर्चा सुननेको भी महाभाग्यसे मिलता है। (क्रमशः) ✻

निर्ग्रन्थ है, निराग है, निःशल्य, जीव अमान है।
सब दोष रहित, अक्रोध, निर्मद, जीव यह निष्काम है ॥४४॥

अनुभवप्रकाश पर प्रवचन

(गतांकसे आगे)

ज्ञेय अधिकार

यह ज्ञेयका अधिकार है। ''ज्ञातुं योग्यं ज्ञेयं'' अर्थात् ज्ञानमें ज्ञात होने योग्य पदार्थ वे ज्ञेय हैं। ज्ञेयोंका यथार्थ ज्ञान होनेपर परसे भिन्न आत्माका अनुभव होता है। पदार्थ द्रव्य–गुण–पर्याय स्वरूप है। तथा प्रत्येक वस्तु गुणरूपसे अनेक है और वस्तुरूपसे एक है। तथा गुणभेद द्वारा भेदरूप है और अभेद वस्तुरूपसे अभेदरूप है। ऐसा भेद–अभेदपना वह पदार्थका स्वरूप है, वह किसी परके कारण नहीं है।

पदार्थ द्रव्यरूपसे नित्य है और पर्यायरूपसे अनित्य है। ऐसा नित्य–अनित्यपना वह पदार्थका स्वरूप है—ऐसा ज्ञान जानता है। संयोगके कारण अनित्यता है ऐसा नहीं है, परन्तु अपने ही कारण वस्तुमें अनित्यता है, इसलिए पर्यायका परिवर्तित होना उसका स्वभाव है, वह परके कारण नहीं है। ऐसा ज्ञेयका स्वरूप जानना वह सम्यग्ज्ञानका कारण है। पदार्थकी पर्याय परके कारण होती है—ऐसा माने तो उसने ज्ञेयके स्वरूपको नहीं जाना है, वह मिथ्याज्ञान है। शुद्ध निश्चयसे वस्तु शुद्ध है। वस्तु सामान्य–विशेषरूप है। त्रैकालिक द्रव्य–गुण सामान्य हैं और पर्याय वह उनका विशेष है, वह वस्तुके ही कारण है, परके कारण नहीं है।

वस्तुरूपसे नित्य सामान्य और पर्याय अपेक्षासे विशेषरूप है। विशेष अवस्था किसी परके कारण हो यह बात नहीं रहती। उपादान–निमित्तका स्पष्टीकरण भी इसमें आ जाता है। निमित्त आए तो कार्य हो, तब फिर वस्तुका विशेष कहाँ रहा? वस्तु स्वयं ही सामान्य–विशेषरूप है, तब परके कारण विशेष हो—यह बात कहाँ रही? विशेष अर्थात् अवस्था, वह पदार्थका स्वरूप है। संसार–मोक्षमार्ग–मोक्ष–निगोद, सिद्ध, सोना–विष्टा वे सब पदार्थोंकी अवस्थाएँ हैं, वह पदार्थका ही विशेष स्वभाव है। परके कारण वे अवस्थाएँ नहीं होतीं। ऐसा वस्तुस्वरूप वह सम्यग्ज्ञानका ज्ञेय है। जिसमें गुण–पर्यायका वास हो उसका नाम वस्तु। वस्तु अपने गुण–पर्यायमें निवास करती है, परन्तु परके गुण–पर्यायमें नहीं रहती।

नहिं स्पर्श-रस-अरु गंध-वर्ण न, क्लीव, नर-नारी नहीं।
संस्थान संहनन सर्व ही ये भाव सब जीवको नहीं ।।४५।।

उसीप्रकार वस्तुके गुण–पर्याय वस्तुमें ही रहते हैं, परमें नहीं रहते; इसलिए पर्याय किसी परके कारण नहीं होती, परन्तु अपने कारण ही होती है। सामान्य–विशेष स्वरूपसे वस्तुका वस्तुत्व है।

द्रव्यके भावको धारण करता है, इसलिए द्रव्यत्व है। द्रव्यका द्रव्यत्व अपने भावको धारण करता है और परमाणु परमाणुके भावको धारण करता है। वस्तु अपने द्रव्यत्वभावको धारण करती है, इसलिए उसमें द्रव्यत्व है। निमित्त और उपादान दोनों पृथक् रहकर स्वतंत्ररूपसे अपने–अपने द्रव्यके भावको धारण करते हैं, अन्यके भावको धारण नहीं करते,—ऐसा ही द्रव्यत्व प्रत्येक द्रव्यका है। तीनकाल–तीनलोकमें आत्मा, परमाणु इत्यादि सर्व द्रव्य अपने ही भावको धरते हैं—ऐसा नियम है।

प्रमेयके भावको धारण करे, प्रमाणज्ञानमें ज्ञात होनेकी योग्यता धरे वह प्रमेयरूप है। राग, पुण्य, पाप, दयादिके भाव होते हैं वे भी ज्ञानमें ज्ञात होने योग्य प्रमेयपना धरते हैं, परन्तु ज्ञान उसे उत्पन्न करे, नष्ट करे या धरे—ऐसा ज्ञानका कार्य नहीं है। यह निमित्त है, यह व्यवहाररत्नत्रयका शुभराग है—ऐसा ज्ञान जानता है, परन्तु उससे ज्ञान हो अथवा निश्चयमोक्षमार्ग हो—ऐसा नहीं है।

कोई कहे कि—प्रथम व्यवहार चाहिए फिर निश्चय होता है, परन्तु अनादिरूढ़ पराश्रयरूप व्यवहार तो है, वह कोई नया–अपूर्व नहीं है, इसलिए उससे धर्मका प्रारम्भ कदापि नहीं हो सकता। व्यवहार, राग, निमित्त यह सर्व वस्तुएँ प्रमेयपना धरती हैं परन्तु निश्चयको धरे ऐसा व्यवहारका स्वभाव नहीं है। जो भी क्रियापर्याय है उसके द्रव्य–गुण–पर्यायरूप प्रमेयपनेको धरते हैं और ज्ञान उसे तदनुसार जानता ही है। इसका नाम धर्म है। प्रमेयत्व प्रत्येक वस्तुके द्रव्य–गुण–पर्यायमें व्याप्त है। इच्छा वह ज्ञानमें प्रमेय होनेके भावको धारण करती है, परन्तु उससे ज्ञान हुआ अथवा परमें क्रिया हुई ऐसा वह बतलानेवाली नहीं है।

अगुरुलघुके भावको धारण करे वह अगुरुलघु अवस्था है। अगुरुलघु नामका गुण द्रव्य–गुण–पर्यायमें व्याप्त है। केवलज्ञानकी अपेक्षासे मतिज्ञान पर्यायको अल्प कहा जाता है, परन्तु वह पर्याय स्वयं अपनेसे अगुरुलघुरूप है। अन्य पर्यायकी अपेक्षा न लो तो प्रत्येक समयकी पर्याय अगुरुलघुस्वभावरूप है। विकारी–अविकारी पर्याय भी उस अवस्थारूपसे

रस, रूप, गंध न, व्यक्त नहि, नहि शब्द, चेतनगुणमयी।
निर्दिष्ट नहिं संस्थान, होता जीवलिंग-ग्रहण नहीं ॥४६॥

बराबर कार्य करे ऐसी अगुरुलघु है, परसे उसका कार्य नहीं है। जहाँ–जहाँ जो पदार्थ है वहाँ उसके द्रव्य–गुण–पर्याय अगुरुलघुके भावको व्यवस्थितरूपसे धारण कर रखते हैं और उस प्रकार ज्ञान उन्हें ज्योंका त्यों—यथावत् जानता है परन्तु उनमें कुछ आगे–पीछे कर दे ऐसा ज्ञानमें नहीं है। बाह्यक्रिया तो आत्मा नहीं कर सकता, परन्तु अपनी पर्यायका परिवर्तन भी वह नहीं कर सकता।

निगोद अवस्था हो या केवलज्ञानरूप अवस्था हो, परन्तु भीतर अनन्त गुण हैं उनमें अल्पता अथवा अधिकता नहीं हो जाती। जघन्य मति–श्रुतज्ञान हो या उत्कृष्ट केवलज्ञान पर्याय हो, परन्तु भीतर ज्ञानगुणमें कुछ न्यूनाधिकता नहीं हो जाती। परमाणुमें वर्णगुण त्रिकाल है, उसकी अवस्थामें कमी–वृद्धि दिखती है तथापि वर्णगुणमें कभी–किसी काल फेरफार नहीं होता, क्योंकि द्रव्य–गुणका स्वभाव त्रिकाल अगुरुलघुभावको धारण करता है और पर्याय भी उस काल सत् है। जिस समय जो पर्याय वर्ते वह अगुरुलघुरूपसे वर्तती है, उसमें कोई फेर नहीं पड़ता—ऐसा पर्याय सत्का अगुरुलघुपना धारण करनेका धर्म है, उसमें कोई परिवर्तन कर सके, ऐसा उसका स्वरूप नहीं है।

प्रत्येक द्रव्यमें अनन्त गुण हैं, और वे उनके जितने प्रदेश हैं उनको धारण करते हैं। प्रत्येक द्रव्यका आकार है, परके कारण जीवका संकोच–विस्तार नहीं है, परन्तु वह अपने प्रदेशत्वगुणकी योग्यतासे है।

अन्यत्वगुणका लक्षण अनन्तगुणोंसे अन्यत्व है परन्तु प्रदेश भेद नहीं है। एक परमाणुमें अनन्तगुण हैं। जिसमें जितने गुण हैं वे त्रिकाल स्वतंत्र है, कभी एक गुण कम नहीं होता। आत्मामें अनन्त गुण हैं, उनमें ज्ञान वह दर्शन नहीं है, चारित्र वह वीर्य नहीं है। इसप्रकार यदि गुणोंमें अनोखापन नहीं हो तो अनन्तगुण सिद्ध नहीं होंगे।

तथा स्वद्रव्य परद्रव्यसे अन्य है; पहले गुणोंमें अन्यपना कहा और फिर द्रव्यमें अन्यत्वकी बात कही। ऐसा अन्यपना है वह ज्ञेय है और ज्ञानका स्वभाव उसे जाननेका है। प्रत्येक वस्तु भिन्न है—ऐसा अन्यत्व है। किसीके कारण दूसरा नहीं है। पृथक् पदार्थोंमें परस्पर भिन्नता है, सर्व पदार्थ एकत्रित होकर तीनकालमें एकमेक नहीं होते। सिद्धमें भी अनन्त जीवोंको विभिन्नता है। सिद्धमें सर्व जीव एकमेक नहीं हो जाते।

है सिद्ध जैसे जीव, त्यों भवलीन संसारी वही।
गुण आठसे जो है अलंकृत जन्म-मरण-जरा नहीं ॥४७॥

तथा वस्तुमें द्रव्यत्व और पर्यायत्व है। द्रव्यत्व वह ज्ञेय है और पर्यायत्व भी ज्ञेय है। वस्तु द्रव्य–पर्यायरूप है, द्रव्य भी सत् है और पर्यायरूपसे पर्याय भी सत् है। पर्याय त्रिकाली नहीं है परन्तु एक समयपर्यन्त वह सत् है। यदि उसे सत् न माने तो उसने द्रव्यको जाना ही नहीं है, और पर्यायको सत् माने तो परके कारण पर्याय हो वह बात नहीं रहती। निमित्तके कारण पर्याय होती है—ऐसा माने तो उसने पर्यायको सत् नहीं जाना है, इसलिए वस्तुके पर्याय धर्मको नहीं जाना। प्रवचनसार गाथा १०७में कहा है कि सत् द्रव्य, सत् पर्याय और सत् गुण है।—ऐसा सत् वह ज्ञानका ज्ञेय है।

वस्तुओंमें आकाशादि पदार्थ सर्वगत हैं और कालाणु आदि एकप्रदेशी हैं, वे असर्वगत हैं। धर्मास्ति–अधर्मास्ति भी लोककी अपेक्षासे सर्वगत हैं। ऐसा भी ज्ञेय है।

तथा पदार्थोंमें कोई मूर्त्त है और कोई अमूर्त्त है। वह अपने स्वभावसे ही है और वह ज्ञानका ज्ञेय है आत्मा अमूर्त्तरूपसे ज्ञेय है और पुद्गल द्रव्य मूर्त्तस्वरूपसे ज्ञेय है। आत्माको कर्मके निमित्तसे मूर्त्त कहना वह उपचार है। आत्मा त्रिकाल अमूर्त्त है, वह कभी मूर्त्त नहीं हो जाता। परमाणु सूक्ष्म होनेसे उसे कईबार अमूर्त्त कह देते हैं, परन्तु वास्तवमें तो वह मूर्त्त ही है और आत्मा अमूर्त्त ही है।

तथा कोई ज्ञेयपदार्थ अक्रिय है और कोई सक्रिय है। जीव–पुद्गलमें गमनादि सक्रियता है, वह उसके अपने कारण है। ध्वजा पवनके कारण नहीं लहराती, परन्तु उसमें वैसा सक्रिय धर्म है। घोड़े पर बैठे हुए मनुष्यकी गति होती है वह घोड़ेके कारण नहीं होती परन्तु वैसा गतिधर्म उस मनुष्यका अपना है। धर्मास्ति आदि द्रव्य अक्रिय स्वभाववाले हैं। सक्रियपना किसी परके कारण नहीं है। शरीरकी सक्रियता आत्माके कारण नहीं है। उस सक्रियताको परके कारण माने तो उसने पदार्थके सक्रियधर्मको नहीं जाना, अर्थात् वैसे ज्ञेयको नहीं जाना है।

धूपमें मनुष्य चले वहाँ उसकी परछाईं पीछे–पीछे चलती दिखाईं देती है, परन्तु वास्तवमें परछाईं नहीं चलती, परन्तु उस–उस स्थानके परमाणु श्वेतमेंसे काली अवस्थारूप (छायारूप) परिणमते हैं। एक स्थानके परमाणु दूसरी जगह नहीं जाते, परन्तु दूसरे स्थान पर रहे हुए परमाणु छायारूप परिणमित होते हैं। वह परिणमन मनुष्यके शरीरके कारण नहीं होता, परन्तु उनकी अपनी अर्थपर्यायका वैसा धर्म है। (क्रमशः) ✻

विन देह अविनाशी, अतीन्द्रिय, शुद्ध निर्मल सिद्ध ज्यों।
लोकाग्रमें जैसे विराजे, जीव हैं भवलीन त्यों ॥४८॥

मुक्तिका मार्ग

सत्तास्वरूप पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

(प्रवचन : १)

तत्त्वनिर्णयकी दुर्लभता

''ॐ श्री सर्वज्ञाय नमः'' इसमें पहले जो 'ॐ' है वह तीर्थंकर भगवानकी एकाक्षरी दिव्यध्वनि है। जब पूर्णानन्द दशा प्रकट होती है तब पूर्व पुण्यबन्धके कारण तीर्थंकर भगवानके बिना ही इच्छाके ॐ इस प्रकारकी सहज ध्वनि प्रगट होती है। वहाँ तीर्थंकरकी धर्मसभामें गणधरदेव होते हैं, जो अनेक लब्धिधारी होते हैं, वे गणधरदेव भगवानकी ओम्कारध्वनिको झेलकर शास्त्ररचना करते हैं, इसलिए यहाँ सर्वप्रथम ॐ शब्द रखा गया है। वह वाणी सर्वज्ञ वीतराग अर्हंतदेवके ही होती है।

इस शास्त्रका नाम सत्तास्वरूप है। सत्तास्वरूपका अर्थ है :–जो जैसा है उसका उस प्रकारसे निश्चय करना। सत्ता अर्थात् 'होना', जो ''है'' उसकी चर्चा है। यहाँ सर्वज्ञकी सत्ताकी बात है; मुमुक्षुको सर्वज्ञदेवके स्वरूपका निर्णय करना चाहिये।

ग्रंथकारका मंगलाचरण

मंगलमय मंगलकरन, वीतराग विज्ञान।
नमो ताहि जातैं भये, अर्हंतादि महान्॥

इस मंगलाचरणमें वीतराग-विज्ञानको नमस्कार किया है, जो अरहंत, सिद्ध इत्यादि महान हुये हैं वे वीतराग-विज्ञानके कारण हुए हैं। लौकिक कलामें वीतराग-विज्ञान नहीं है। केवलज्ञान व मोक्ष तो वीतराग-विज्ञानसे ही होता है इसलिए वास्तविक आदर तो वीतराग-विज्ञानका ही होता है; इसीसे अरहंत और सिद्ध आदि महान हुए हैं। ध्यान रहे कि यहाँ पर मात्र वीतराग या मात्र विज्ञान नहीं कहा है किंतु 'वीतराग-विज्ञान' इन दोनोंको एकसाथ कहा है। वह वीतराग-विज्ञान कैसा है? वह स्वयं मंगलमय है, स्वयं मंगलस्वरूप है–यों कहकर पहले तो मांगलिकको अभेदरूपमें ले लिया है। वीतराग-विज्ञानसे स्वरूपकी सम्पदा प्रकट हुई है और पुण्य-पापकी आकुलताका नाश हुआ है, इसलिए वह वीतराग-विज्ञान स्वयं मंगलस्वरूप है।

व्यवहारनयसे हैं कहे सब जीवके ही भाव ये।
हैं शुद्धनयसे जीव सब भवलीन सिद्ध स्वभावसे ॥४९॥

वीतराग-विज्ञानका अर्थ है सम्यग्ज्ञान। वह स्वयं ही मंगलमय है और मंगलका कारण है। सच्चा ज्ञान–वीतरागीज्ञान-तत्त्वज्ञान, आत्मज्ञान यह सब मंगलस्वरूप है और मंगलका उपाय भी यही है। वह आत्माकी स्वरूप-सम्पदा प्राप्त करनेरूप मंगलका कारण है। इसलिए यहाँ पर शास्त्रकारने शास्त्रके प्रारम्भमें ही उसे नमस्कार किया है। इस वीतराग-विज्ञानके कारण ही अर्हंतादि महान हुए हैं। वीतराग-विज्ञानको प्राप्त करके ही पंच परमेष्ठियोंने शुद्ध आत्मतत्त्व पाया है।

इस ग्रंथके कर्ता पण्डित श्री भागचन्दजी गृहस्थ थे। उन्होंने इस ग्रंथमें गृहीत मिथ्यात्वको छुड़ानेके लिये बहुत ही प्रभावक ढंगसे कथन किया है। शुद्ध जैनसंप्रदाय पाकरके भी बहुतसे जीव सच्चे देव, शास्त्र और गुरुका निर्णय नहीं करते और यदि कोई जीव मात्र सच्चे देव, शास्त्र, गुरुका निर्णय करले किन्तु आत्मतत्त्वका निर्णय न करे तो उसके शुभभाव होगा, लेकिन धर्म नहीं होगा। और सच्चे देव, शास्त्र, गुरुको पहिचाने बिना और उनकी भक्ति प्रगट हुए बिना आत्माकी पहिचान नहीं हो सकती। इसलिए सबसे पहले सत्तास्वरूपमें देव, शास्त्र, गुरुके सच्चे स्वरूपका वर्णन किया है। इसकी पहचान व बहुमान करना प्रत्येक जैनका कर्तव्य है।

सभी जीव सुख चाहते हैं। जो काम करना चाहते हैं, वह सब सुख प्राप्त करनेकी इच्छासे ही करते हैं। प्रत्येक क्रियासे वे सुख प्राप्त करना चाहते हैं। दूसरेको मारते हैं वह भी सुखके लिए, पर-वस्तुकी चोरी करते हैं वह भी सुखके लिए, झूठ बोलते हैं सो भी सुखके लिए और धन-दौलतका परिग्रह करते हैं सो भी सुखके लिए, इसप्रकार अनेकविध पाप करके भी अज्ञानी जीव सुख प्राप्त करना चाहते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि सुख तो सभीको प्यारा है; किन्तु सुखके-सच्चे उपायकी अनादिकालसे खबर नहीं है। सब लोग धर्म सुननेको किसलिए एकत्रित होते हैं ? सभी सुखकी इच्छासे ही आते हैं किंतु सच्चे तत्त्वनिर्णयके बिना सुख नहीं होता; जीवने अनन्तकालमें तत्त्वका यथार्थ निर्णय नहीं किया। यदि तत्त्वनिर्णय हो जाय तो उसमें रमणताका भाव हुए बिना न रहे, और यदि तत्त्वमें रमणता हो जाय तो यह दुःख होवे ही नहीं। इस प्रकार तत्त्वनिर्णय यह सुखकी प्राप्तिका मूल है।

किसीसे यह पूछनेकी आवश्यकता नहीं है कि तुमको सुख प्रिय है या नहीं ? प्राणी

परद्रव्य हैं परभाव हैं पूर्वोक्त सारे भाव ही।
अतएव हैं ये त्याज्य, अन्तस्तत्त्व है आदेय ही ॥५०॥

प्रत्येक कार्यमें सुखके लिए ही दौड़ता है। स्वर्गके देव या नरकके नारकी, तिर्यंच या मनुष्य, त्यागी या गृहस्थ ये सब सुखके लिए ही आतुर रहते हैं, किन्तु यह सुख कैसे मिलता है, क्या यह सुख बाहरसे पैसा इत्यादिमेंसे आता होगा ? नहीं; वह सुख राग-द्वेषरूप भावकर्मके नाश करने पर प्रगट होता है, भावकर्मके नाश कर देने पर आठों प्रकारके द्रव्य-कर्मका नाश हो जाता है। और सब कर्मोंका नाश होने पर स्वतंत्र सुख प्रगट होता है।

सुख बाहरसे नहीं आता किंतु भीतरसे ही प्रकट होता है। बाहर सुख कहाँ ? क्या शरीरके पिंडमें सुख है ? पैसेमें सुख है ? स्त्रीमें सुख है ? सुख है कहाँ ? बाह्यमें तो धूल–जड़ दिखाई देती है। क्या जड़में आत्माका सुख हो सकता है ? कदापि नहीं हो सकता। किंतु अज्ञानी जीवने परवस्तुओंमें सुखकी मिथ्या कल्पना कर रखी है। यद्यपि परवस्तुओंमें सुख नहीं है, कभी परवस्तुमें सुख देखा भी नहीं गया, फिर भी मूढ़ताके कारण वैसी कल्पना करली है। अयथार्थको यथार्थ मान लेनेसे परिभ्रमणका दुःख दूर नहीं हो सकता। अज्ञानीको सुखस्वभावकी खबर नहीं है, इसलिए वह स्वभावसे विरुद्ध भाव कर रहा है और इसलिए आठ कर्मोंका बन्ध होता है, तथा आकुलताका भोग किया करता है। यदि वह स्वभावका भान करले और स्वभावसे विरुद्ध जो राग-द्वेषके भाव हैं उनका नाश करे तो सब कर्म दूर हो जाय और दुःख मिटकर सुख हो जाय।

जो परसे सुख प्राप्त करना चाहता है वह मूढ़ है। यह मानना मूढ़ता है कि जगतमें मेरा आदर हो तो मुझे सुख हो। परके द्वारा मान-अपमानसे कहीं आत्माको शान्ति थोड़ी ही होनेवाली है ? राजा इत्यादिकको बहुतसे आदमी राजदरबारमें खमा खमा (मुजरा देकर) करते हैं, किंतु आँख बन्द (मृत्यु) होने पर उसमेंसे क्या साथमें रहता है ? क्या इसमें सचमुच कही सुख है ? नहीं। सुख तो सर्व कर्मोंके नाशसे पैदा होता है। बाहरमें शक्ति बल लगानेसे वह प्रगट नहीं होता। ताला खोलनेके लिए शक्ति या बलकी आवश्यकता नहीं, हथोड़ेसे ताला नहीं खुलता किन्तु टूट जाता है और यदि युक्तिपूर्वक चाबी लगाई जाय तो वह सुगमतासे जल्दी खुल जाता है। इसीप्रकार आठ कर्मोंका नाश किये बिना अर्थात् विकारीभावोंका नाश किये बिना बाह्यके प्रयत्नसे सुख प्रगट नहीं होता। ''सत्यको समझनेकी क्या आवश्यकता है, शरीरकी खूब क्रिया करो, उससे सुख प्रगट हो जायगा''— इस प्रकारके व्यर्थ बलसे किसीको सुख प्रगट नहीं होगा। (क्रमशः) ✻

मिथ्याभिप्राय विहीन जो श्रद्धान वह सम्यक्त्व है।
संशय-विमोह-विभ्रान्ति विरहित ज्ञान सुज्ञानत्व है ॥५१॥

❀ वीतरागी शास्त्रोंका तात्पर्य ❀

- कभी ऐसा कहे कि, द्रव्यार्थिकनयसे आत्माको बन्ध-मोक्ष नहीं है।
- कभी ऐसा कहे कि, रत्नत्रयपरिणत आत्मा ही मोक्षमार्ग है।
- कभी ऐसा कहे कि, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वह मोक्षमार्ग है।
- कभी ऐसा कहे कि, ज्ञान और क्रिया, वह मोक्षमार्ग है।
- कभी ऐसा कहे कि, चार प्रकारकी आराधना, वह मोक्षमार्ग है।
- कभी ऐसा कहे कि, उत्तमक्षमादि दसधर्म मोक्षका कारण है।
- कभी ऐसा कहे कि, शुद्धआत्माकी अनुभूति वह मोक्षमार्ग है।
- कभी ऐसा कहे कि, निश्चयनयाश्रित मुनिवर प्राप्ति करे निर्वाण की।
- कभी ऐसा कहे कि, ज्ञानकी अनुभूति वही मोक्षमार्ग है।
- कभी ऐसा कहे कि, वीतरागता – वह ही मोक्षमार्ग है।
- कभी ऐसा कहे कि, शुद्धोपयोग – वह ही मोक्षमार्ग है।
- कभी ऐसा कहे कि, स्वद्रव्यका आश्रय वह मोक्षमार्ग है।

परन्तु इन सभी प्रकारमें एक ही तात्पर्य है, कहीं भी परस्पर विरुद्धता नहीं है। भिन्न भिन्न प्रकारसे समझानेके लिये अनेक विवक्षापूर्वक कथन किया हो, वहाँ उस विवक्षाको समझकर उसका तात्पर्य लेना चाहिये। वीतरागी शास्त्रोंका तात्पर्य ऐसा ही होता है कि जिससे आत्माको लाभ ही हो...और वीतरागता बढै।

सम्यग्दर्शनसे पूर्वके ज्ञान-चारित्रमें कुछ विकार देखकर, तथा निर्जरा देखकर, उसमें विशुद्धता भले कही, परन्तु सम्यग्दर्शनके बिना उसका जोर चलता नहीं है अर्थात् मोक्षमार्ग बनता नहीं है अतः सम्यग्दर्शनकी ही प्रधानता हुई। सम्यग्दर्शन सहितका ज्ञान और सम्यग्दर्शन सहितकी स्वरूपस्थिरतारूप क्रिया–वही मोक्षमार्ग है, इस प्रकार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वह मोक्षमार्ग है। और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रको मोक्षमार्ग कहने पर उससे विरुद्ध ऐसे मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र ये बन्धके कारण हैं– ऐसा भी आ गया।

पाँच भावोंकी व्याख्या

(१) **औपशमिकभाव** : *आत्माके पुरुषार्थ द्वारा अशुद्धताका प्रगट न होना, अर्थात् दब जाना, आत्माके इस भावको औपशमिकभाव कहते हैं। यह जीवकी एक समयमात्रकी पर्याय है, वह एक-एक समय करके अन्तर्मुहूर्त तक रहती है, किन्तु एक समयमें एक ही अवस्था होती है, और उसी समय आत्माके पुरुषार्थका निमित्त पाकर जड़कर्मका प्रगटरूप फल जड़कर्मका उपशम है।*

(२) **क्षायिकभाव** : *आत्माके पुरुषार्थसे किसी गुणकी शुद्ध अवस्थाका प्रगट होना, वह क्षायिकभाव है। यह भी जीवकी एक समयमात्रकी अवस्था है। एक-एक समय करके, वह सादि-अनन्त रहती है, तथापि एक समयमें एक ही अवस्था होती है। सादि अनन्त-अमूर्त अतीन्द्रिय स्वभाववाले केवलज्ञान-केवलदर्शन-केवलसुख-केवलवीर्य युक्त फलरूप अनन्त चतुष्टयके साथ रहनेवाली परम उत्कृष्ट क्षायिकभावकी शुद्धपरिणति, जो कार्यशुद्धपर्याय है, उसे क्षायिकभाव भी कहते हैं, और उसी समय आत्माके पुरुषार्थका निमित्त पाकर कर्मावरणका नाश होना, वह कर्मका क्षय है।*

(३) **क्षायोपशमिकभाव** : *आत्माके पुरुषार्थका निमित्त पाकर, जो कर्मका स्वयं आंशिक क्षय और आंशिक उपशम, वह कर्मका क्षायोपशम है और क्षायोपशमिकभाव आत्माकी पर्याय है। यह भी आत्माकी एक समयकी अवस्था है, वह उसकी योग्यताके अनुसार उत्कृष्ट काल तक भी रहती है, किन्तु प्रति समय बदलकर रहती है।*

(४) **औदयिकभाव** : *कर्मोंके निमित्तसे आत्मा अपनेमें जो विकारभाव करता है, वह औदयिकभाव है। यह भी आत्माकी एक समयकी अवस्था है।*

(५) **पारिणामिकभाव** : *'पारिणामिक'का अर्थ है सहजभाव, उत्पाद-व्यय-रहित ध्रुव—एकरूप स्थिर रहनेवाला भाव, पारिणामिकभाव है। पारिणामिकभाव सभी जीवोंके सामान्य होता है। औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक—इन चार भावोंसे रहित जो भाव है, वह पारिणामिकभाव है। 'पारिणामिक' कहते ही 'परिणमित होता है' ऐसा ध्वनि आता है। परिणमित होता है अर्थात् कि द्रव्य-गुणका नित्य वर्तमानरूप निरपेक्षपना है, ऐसे द्रव्यकी पूर्णता है। द्रव्य-गुण और निरपेक्षपर्यायरूप वस्तुकी जो पूर्णता है उसे पारिणामिक कहते है।*

जिसका निरन्तर सद्भाव रहता है, उसे पारिणामिकभाव कहते हैं। सर्वभेद जिसमें गर्भित है ऐसा चैतन्यभाव वह ही जीवका पारिणामिकभाव है। मतिज्ञानादि तथा केवलज्ञानादि जो अवस्थाएँ हैं, वे पारिणामिकभाव नहीं है।

युवा-विभाग

(इस विभागके अंतर्गत मुमुक्षुओंकी पूज्य गुरुदेवश्रीके साथ रात्रिके समय चर्चा हुई, वह दी जा रही है।)

प्रश्न :–आत्मज्ञान करनेके लिए तो अनेक शास्त्रोंका गहन अध्ययन करना पड़ेगा। यदि इसके लिए कोई सरल मार्ग हो तो बतलाईये ?

उत्तर :–आत्मज्ञानके लिए बहुतसे शास्त्रोंके पढ़नेकी बात ही कहाँ है ? तुम्हारी पर्याय दुःखके कारणोंकी तरफ झुकती है, उसे सुखके कारणभूत स्वभावके सन्मुख लगा दो—इतनीसी बात है। स्वयं आत्मा अनन्त-अनन्त गुण-संपन्न भगवान ज्ञानानंद स्वरूप है, उसकी महिमा लाकर स्वसन्मुख हो जाओ ! इतनी सी करनेयोग्य क्रिया है। अपनी पर्यायको द्रव्य-सन्मुख लगा दो– बस आत्मज्ञानका यही मार्ग है।

प्रश्न :–स्वभाव-सन्मुख होनेके लिए 'मैं शुद्ध हूँ', 'ज्ञायक हूँ' इत्यादि चिंतवन करते-करते कुछ अपूर्व आनंदका स्वाद आता है। वह आनन्द अतीन्द्रिय है अथवा कषायकी मन्दताका है—इसका निर्णय कैसे हो ?

उत्तर :–चिंतवनमें कषायकी विशेष मन्दता होने पर उसे आनन्दका मान लेना तो भ्रम है, वह वास्तविक अतीन्द्रिय आनंद नहीं है। अतीन्द्रिय आनंदका स्वाद आने पर तो राग और ज्ञानकी भिन्नता प्रतीतिमें आती है। इस अतीन्द्रिय आनंदका क्या कहना ? अलौकिक है। सच्ची रुचिवाले जीवको कषायकी मंदतामें अतीन्द्रिय आनंदका भ्रम नहीं होता।

प्रश्न :–आत्मसंस्कारोंको दृढ़ करनेके लिए क्या करना ?

उत्तर :–वस्तुस्वरूपका दृढ़ निर्णय करना। शुद्ध हूँ, एक हूँ, ज्ञायक हूँ—इसका चारों तरफसे बारम्बार निर्णय पक्का करके दृढ़ करना।

प्रश्न :–सत्का संस्कार डालनेसे क्या लाभ है ?

उत्तर :–जिसप्रकार कोरे मटकेमें जलकी बुँद डालनेसे मटका उसे चूस लेता है और जलबिन्दु उपर दृष्टिगोचर नहीं होती, फिर भी जलकी आर्द्रता तो अन्दर रहती ही है, इसी कारण विशेष बूँदे पड़ने पर मटकेकी मिट्टी गीली हो जाती है और जल उसके ऊपर दिखाई देने लगता है; उसी प्रकार जो जीव सत्की गहरी जिज्ञासा करके सत्के गंभीर संस्कार अंदरमें

चल-मल-अगाढ़पने रहित श्रद्धान वह सम्यक्त्व है।
आदेय-हेय पदार्थका अवबोध सुज्ञानत्व है ॥५२॥

डालेगा, उस जीवको कदाचित् वर्तमानमें पुरुषार्थकी कचासके कारण, कार्य न हो सके, तथापि सत्के गहरे डाले हुए संस्कार दूसरी गतिमें प्रकट होंगे; अतः सत्के गहरे संस्कार अवश्य डालो।

प्रश्न :–एक पर्याय दूसरी पर्यायको स्पर्श नहीं करती तो पूर्व संस्कार दूसरी पर्यायमें कैसे काम करते हैं?

उत्तर :–एक पर्याय दूसरी पर्यायको स्पर्श नहीं करती, यह बात तो ठीक ही है, परंतु वर्तमान पर्यायमें ऐसा प्रबल संस्कार डाला होगा तो उसका जोर दूसरी पर्यायमें प्रकट हो–ऐसी ही उस उत्पाद-पर्यायकी स्वतन्त्र योग्यता होती है, उत्पाद-पर्यायके सामर्थ्यसे स्मरणमें आता है।

प्रश्न :–श्रवण करके संस्कार दृढ़ करना—आगे बढ़नेका कारण है क्या?

उत्तक :–हाँ, अन्दरमें संस्कार दृढ़ डाले तो आगे बढ़ता है।

प्रश्न :–श्रवणमें प्रेम हो तो मिथ्यात्व भी मन्द पड़ता होगा?

उत्तर :–मिथ्यात्व और अनन्तानुबंधी तो अनन्तबार मन्द पड़ चुका है, फिर भी वह सम्यग्दर्शनका कारण नहीं बना। मूल दर्शनशुद्धि पर जोर होना चाहिए।

प्रश्न :–नवतत्त्वका विचार तो पहले अनन्तबार कर चुके हैं, फिर भी लाभ क्यों नहीं हुआ?

उत्तर :–भाई ! पहले जो नवतत्त्वका विचार कर चुके हो, उससे इसमें कुछ विशेषता है। वह तो अभेदस्वरूपके लक्ष बिना किया था, जब कि यहाँ अभेदस्वरूपके लक्ष सहित आत्मानुभूतिकी बात है। पहले अकेले मनके स्थूल विषयसे नवतत्त्वके विचाररूप आँगन तक तो अनन्तबार आया है, परन्तु उससे आगे बढ़कर विकल्प तोड़कर ध्रुव चैतन्यतत्त्वमें एकपनेकी श्रद्धा करनेकी अपूर्व समझसे वंचित रहा; इसलिए भवभ्रमण खड़ा रहा।

प्रश्न :–प्रवचन तो वर्षोंसे सुनते आ रहे हैं, अब तो अन्दर जानेका कोई संक्षिप्त मार्ग बताईये? जीवन अल्प रह गया है?

उत्तर :–आत्मा अकेला ज्ञानस्वभाव चिद्घन है, अभेद है, उसकी दृष्टि करो। भेदके ऊपर लक्ष करनेमें रागी जीवको राग उत्पन्न होता है, इसलिए भेदका लक्ष छोड़कर अभेदकी दृष्टि करो–यह संक्षिप्त सार है।

जिनसूत्र समकितहेतु है, अरु सूत्रज्ञाता पुरुष जो।
वह जान अंतर्हेतु जिनके दर्शनमोहक्षयादि हो ॥५३॥

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्रीकी गुरुभक्तिपूर्ण आध्यात्मिक तत्त्वचर्चा

प्रश्न :— *आत्मा दूसरोंको जानता है इसलिये ज्ञायक है या स्वयं ज्ञायक है?*

समाधान :—शास्त्रमें आता है न? कि मैं द्रष्टा हूँ, द्रष्टाको देखता हूँ, द्रष्टा द्वारा देखता हूँ, स्वयं द्रष्टा–ज्ञाता हूँ, अन्यका द्रष्टा हूँ ऐसा नहीं। मैं स्वयं द्रष्टा हूँ; मैं द्रष्टा–ज्ञाता स्वभावसे परिपूर्ण हूँ। अग्नि दूसरेको उष्ण करे इसलिए उष्ण है ऐसा नहीं, किन्तु वह स्वयं उष्णतासे भरी है। बर्फ स्वयं ठंडा है; दूसरेको ठंडा करे इसलिए वह ठंडा है ऐसा नहीं है, बर्फका स्वभाव स्वयं ही ठंडा है। वैसे ही मैं दूसरोंको देखता–जानता हूँ इसलिए ज्ञाता हूँ ऐसा नहीं, मैं स्वयं द्रष्टा–ज्ञाता हूँ। मैं अनन्तशक्तिसे भरपूर ज्ञाता हूँ। वस्तु स्वतःसिद्ध अनादि–अनन्त है; उसे किसीने बनायी नहीं है, वह स्वयं है। जिस प्रकार जड पदार्थ स्वयं है, उसी प्रकार मैं चैतन्य स्वयंसिद्ध वस्तु ज्ञाता हूँ। उस ज्ञातामें अन्य अनन्तगुण भरे हैं। वह ज्ञाता ऐसा है कि स्वयं अनन्ततासे भरपूर है। उस स्वयं ज्ञाताको जान लेना। दूसरोंको जानता–देखता है इसलिए जानने–देखनेवाला है ऐसा नहीं, स्वयं ज्ञाता–द्रष्टा है।

प्रश्न :— *मैं स्वयं ज्ञायक हूँ ऐसा अभ्यास ज्यों–ज्यों उसे गहराईसे विशेष हो त्यों–त्यों मार्ग सहजरूपसे मिलता है?*

समाधान :—(हाँ, उसे अवकाश है)। अंतरमें अभ्यास करे कि मैं स्वयं ज्ञायक हूँ; ये सब जो भाव दिखाई देते हैं वे मैं नहीं हूँ; मैं स्वयं ज्ञायक सबसे पृथक् तत्त्व हूँ, निरालातत्त्व हूँ;—ऐसे बारम्बार अंतरसे अभ्यास करे। अपने अस्तित्वकी उसे महिमा हो। शून्यतामात्र नहीं अर्थात् मैं अनादि–अनन्त, मूल्यरहित तत्त्व हूँ ऐसा नहीं परंतु, अनन्तशक्तिसे भरपूर ऐसा 'चैतन्य अस्तित्व' सो मैं हूँ ऐसी महिमा आये तो परपदार्थोंकी महिमा छूट जाय। विकल्प छूटनेपर मैं शून्य हो जाऊँ ऐसा नहीं है; मैं अनन्तशक्तियोंसे भरपूर हूँ; विकल्प मेरा स्वभाव नहीं है; मैं निर्विकल्पतत्त्व अनन्ततासे भरपूर हूँ।

प्रश्न :— *'ज्ञान जुदा और राग जुदा' ऐसा पहिचान लेनेके बाद उसे ऐसे विकल्प करनेकी आवश्यकता होती है कि ज्ञान जुदा है और राग जुदा है?*

सम्यक्त्व, सम्यग्ज्ञान अरु चारित्र मोक्ष उपाय है।
व्यवहार निश्चयसे अतः चारित्र मम प्रतिपाद्य है॥५४॥

समाधान :—जिसे यथार्थ पहिचान हो उसे ज्ञान जुदा और राग जुदा ऐसा सहज हो जाता है। जिसे सहज दशा हो उसको ज्ञान जुदा और राग जुदा ऐसी सहज ज्ञाताधारा वर्तती रहती है। उदयधारा और ज्ञानधारा भिन्न है। स्वानुभूति होनेके पश्चात् भेदज्ञानकी धारा वर्ते उसमें पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता। उसमें सहज भेदज्ञान वर्तता है। जो–जो उदय आये और अभी अस्थिरता है इसलिये जो विकल्प खड़ा हो उसके साथ 'मैं ज्ञायक हूँ' ऐसी ज्ञाताधारा सहज रहती है। उसे सहज रहता है कि यह जुदा है और मैं जुदा हूँ। यद्यपि पुरुषार्थकी मन्दताके कारण उसमें (विकल्पमें) अल्प जुड़ता है, यदि न जुड़े तो वीतरागता हो जाय। अतः अल्प जुड़ता है, परन्तु ज्ञायककी तीव्र दृढ़ता रहती है कि मैं चैतन्यतत्त्व जुदा हूँ; यह तत्त्व (विकल्प) मैं नहीं, यह तो विभावभाव है, ऐसी भेदज्ञानकी सहजधारा वर्तती ही रहती है। विकल्प करनेकी जरूरत नहीं पड़ती किन्तु भेदज्ञान रहता ही है। पश्चात् ज्यों–ज्यों दशा बढ़ती जाय और मुनिदशा आये तब विशेष तीव्रता होती जाती है। ज्ञायककी धारा तथा द्रव्यकी दृष्टि अधिक बलवान् होते–होते मुनिदशामें उग्रता आती रहती है। उदयधारा और ज्ञानधारा तो जबतक पूर्ण वीतरागता तथा केवलज्ञान न हो तबतक वर्तती है। भेदज्ञानकी धारा सम्यग्दर्शनमें अमुक प्रकारकी रहती है और क्रमसे स्वरूपकी लीनता बढ़ती जाय त्यों–त्यों उग्रता बढ़ती जाती है।

प्रश्न :—*ज्ञानीको अस्तित्वकी मस्ती कैसी होती है?*

समाधान :—जहाँ तत्त्वकी दृष्टि हुई वहाँ किसी भी परभावके बिना स्वयं टिक सकता है (ऐसी मस्ती आ जाती है)। स्वतः सिद्ध वस्तु अन्य किसी पदार्थके बगैर टिकनेवाली है। जहाँ द्रव्यकी प्रतीति होती है वहाँ उस प्रतीतिमें पूरा बल साथमें आता है। प्रतीति तो उसे दृढ़ ही है कि मैं किसी पदार्थके आश्रयसे टिका रहूँ ऐसा तत्त्व नहीं हूँ। 'मैं स्वयं शाश्वत हूँ, स्वयं वस्तु हूँ' ऐसी प्रतीति तो सम्यग्दर्शनमें पहले ही आ जाती है। फिर तो उसे लीनता बढ़ती जाती है, स्वरूपका वेदन बढ़ता जाता है, स्वानुभूति बढ़ती जाती है और बीचमें सविकल्पदशामें आंशिक ज्ञायककी धारा, शान्तिका वेदन बढ़ता जाता है।'मैं अपने अस्तित्वमें स्वयं स्थित रहनेवाला हूँ,' वह प्रतीतिमें आगया फिर तो स्वरूपमें ही रहूँ, बाहर न जाऊँ, स्वरूपमें आनंद है–शान्ति है; स्वरूपमेंसे बाहर जाना मुश्किल पड़े, ऐसी उसकी दशा वृद्धिगत होती जाती है। अल्प अस्थिरताके कारण परिणति बाहर जाती है। परन्तु उसकी उग्रता होती रहती है (अर्थात्) भेदज्ञानकी धारा और द्रव्यकी प्रतीतिका बल बढ़ता जाता है, लीनतामें विशेष वृद्धि होती रहती है।

बाल विभाग

प्रभुदर्शन की भावना का फल

राजगृह नगरमें नागदत्त श्रेष्ठी अपनी पत्नी भवदत्ताके साथ रहते हुए धर्मसाधना करता था। एक दिन नागदत्तने सामायिक करते समय प्रतिज्ञा ली कि सामने रखा हुआ दीपक जब तक जलता रहेगा तब तक सामायिक करता रहूँगा। इधर सामायिक करते तृषा सताने लगी और उधर सेठानीने सोचा कि दीपक बूझनेसे अंधकार हो जायेगा ऐसा विचार कर उसमें तेल डालने लगी। तृषाके कारण सेठको सामायिक विसमृत हो गयी और पानी...पानी करते हुए आर्त्तध्यानपूर्वक मृत्युको प्राप्त कर अपने ही घरकी वापिकामें मेंढ़क हुआ इस ओर सेठानीको शेठकी बारबार याद आने पर चित्त कहीं भी लगता नहीं था...आगे..

अरे! संसारकी लीला विचित्र है! कभी संयोग, कभी वियोग; संयोगमें हर्ष, वियोगमें शोक। वास्तवमें संयोग नहीं, संयोगाधीन बुद्धि दुखका कारण है।

अहो! इस कालमें मुमुक्षु जीवको संसारकी प्रतिकूल दशाओंकी प्राप्ति होना, यह उसे संसारसे तरनेमें साधन है, वैराग्यका निमित्त है।

जगतमें अनादिनिधन बस्तुएँ भिन्न-भिन्न अपनी-अपनी मर्यादा सहित परिणमित होती हैं। कोई किसीके आधीन नहीं, कोई किसीके परिणमित करानेसे परिणमित नहीं होती, उन्हें परिणमित करानेका भाव मिथ्यात्व है। अहो! जगतका कण-कण स्वतंत्र है।

देखो, परिणामोंकी विचित्रता! असीम वैभवके बीच रहनेवाला सेठ क्षणमें वापिकावासी हो गया। एक दिन सेठानी, उसी वापिकामें पानी भरने गई तो मेंढकने उसे देख लिया, देखते ही उसे पूर्व-पर्याय का स्मरण हो आया।

अरे! मैं अभागा सामायिककी विराधना करके पानीके विकल्पसे आर्त्तपरिणाम करके मरा। अरे कहाँ सेठ! और कहाँ पानीका मेंढ़क!! धिक्कार! इस दुःखमय विचित्र संसारको, ये क्या हो गया? किसे सुनाऊँ अपनी दुःख भरी व्यथा! यहाँ कौन मेरी पुकार सुनेगा? कौन मेरी भाषा समझेगा? अहो! कैसे समझाऊँ इस अपनी पत्नीको कि मैं ही तेरा अभागा पति हूँ।''

ऐसा विचार करते-करते मेंढककी आँखोंमें अश्रुकी धार लग गई। पूर्व पर्यायका सारा वृत्तांत उसे हस्तामलकवत् स्पष्ट दिख रहा था। वह पत्नीके प्रति असीम स्नेहको याद करके, शब्द करता हुआ उछल-उछल कर उसके वस्त्रों पर चढ़ने लगा। पत्नीको क्या खबर थी कि वह कौन है? वह तो भयसे उस मेंढकको पानीमें ही धकेलकर घर चली गई।

व्यवहारनयचारित्रमें व्यवहारनय तप जानिये।
चारित्र निश्चयमें तपश्चर्या नियतनय मानिये ॥५५॥

अहो ! जिस पतिके बिना एक क्षण भी न रहना चाहती थी, दिन-रात जिसकी यादमें बेचैन रहती थी, अज्ञानमें उसीके द्वारा अपने पतिकी ये दशा। रे रे संसार !!

"हे जीव ! इस क्लेशरूप संसारसे विरक्त हो ! विरत हो !! कुछ विचार कर, प्रमाद छोड़कर जागृत हो ! जागृत हो !! नहीं तो चिन्तामणि रत्न जैसी यह मनुष्यदेह निष्फल चली जायेगी।"

इसी प्रकार सेठानी जब-जब वापिकामें पानी भरने जाती, तब-तब मेंढक उछल-उछल कर सेठानीकी ओर दौड़ता, सेठानी उसे पानीमें ही धकेलकर घर चली आती—यह क्रम बहुत दिनों तक चलता रहा ।

एक दिन सेठानी मन को बहलाने अपनी सहेलियों के साथ उपवन में गई थी, वहाँ केली करते-करते अचानक उसकी दृष्टि एक शिला पर विराजमान सुव्रत नामक अवधिज्ञानी वीतरागी मुनिराज पर पड़ी, मुनिराज सामायिक में ध्यानस्थ थे। उनको ध्यानस्थ अवस्था में देख सेठानीको अपने ध्यानस्थ पतिकी याद आ गई, उसकी आँखोंमें आँसू डबडबा आये, वह पतिके विरहका दुःख भुलाने सखियोंके साथ मुनिराजके पास गयी।

ध्यानसे हटने पर मुनिराजने सबको धर्मवृद्धिका मंगल आशीर्वाद दिया, सेठानीने मुनिराजको अवधिज्ञानी जानकर अपनी सम्पूर्ण व्यथा कह डाली और बोली—

"हे करुणानिधि ! मैं जब-जब अपनी वापिकामें पानी भरने जाती हूँ तो एक मेंढक शब्द करता हुआ उछल-उछल कर मेरे ऊपर आता है, मुझे भी उस पर अपार स्नेह उमड़ता है, क्या कारण है ? कृपया इसका सम्बन्ध कहिये।

अवधिज्ञानी मुनिराज भी करुणापूर्वक समझाते हुए बोले—

"पुत्री ! वह तुम्हारे पतिका ही जीव है, आर्त्तपरिणामपूर्वक मरणसे निकृष्ट बंध हो गया, उसे पूर्व पर्यायका जातिस्मरण हो गया है, वह पूर्व सम्बन्धको जानकर स्नेहसे तुम्हारे पास आता है, वह पात्र जीव है, अल्पकालमें अपने परिणामोंको सुधारकर उत्तम गतिकी प्राप्ति करेगा।"

सेठानीने जब यह जाना तो उसे संसारकी दशाका विचार आया और वह मेंढकको पतिका जीव जानकर आप्लावित नेत्रों से उसे सम्मानपूर्वक अपने घर ले आयी तथा पतिवत् स्नेहसे उसका पालन करने लगी। (क्रमशः) ✻

रे जानकर कुलयोनि, जीवस्थान मार्गण जीवके।
आरम्भ इनके से विरत हो प्रथमव्रत कहते उसे ॥५६॥

सुवर्णपुरी समाचार :—

अध्यात्मतीर्थ सुवर्णपुरीका धार्मिक वातावरण अनंत उपकारमय पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी एवं उनके अनन्य भक्त पूज्य बहिनश्री चंपाबेनके कल्याणवर्षी पुण्यप्रतापसे, आशीर्वादसे देव-गुरु-शास्त्रकी, धर्मकी आराधनामय रहता है एवं पं. रत्नश्री हिंमतभाई जे. शाहने बनाये हुए सुमधुर काव्यसे वातावरण भक्तिमय रहता है :—

प्रातः : ६-३० से ६-५० : पूज्य बहिनश्रीकी धर्मचर्चाकी ऑडियो-टेप

सुबह : ८-४५ से ९-४५ : परमागम श्री समयसार पर पूज्य गुरुदेवश्रीका (१९वीं बारका) सीडी प्रवचन

दोपहर : ३-०० से ४-००: श्री पंचास्तिकाय संग्रह पर पूज्य गुरुदेवश्रीका टेप प्रवचन

दोपहर : ४-०० से ४-३० : श्री जिनेन्द्र भक्ति

रात्रि : ७-४५ से ८-४५ : बहिनश्रीके वचनामृत पर पूज्य गुरुदेवश्रीका सीडी प्रवचन

❀ **श्री पंचमेरु-नंदीश्वर जिनालयका वार्षिक प्रतिमहोत्सव :**—श्री पंचमेरु-नंदीश्वर जिनालयका ३९वाँ वार्षिक प्रतिष्ठोत्सव फाल्गुन शुक्ला-३, मंगलवार ता. १२-३-२०२४ से १६-३-२०२४ शनिवार तक आनंदोल्लास सह विशेष श्री पंचकल्याणक पूजन विधान तथा पूजनभक्तिपूर्वक मनाया जायेगा।

❀ **फाल्गुनी नंदीश्वर अष्टाह्निका :**—सुवर्णपुरीके श्री पंचमेरु-नंदीश्वर जिनालयमें फाल्गुन शुक्ला अष्टमी ता. १७-३-२०२४ रविवारसे ता. २५-३-२०२४ सोमवार तक फाल्गुन मासकी नंदीश्वर अष्टाह्निका महोत्सव श्री पंचमेरु नंदीश्वर विधान पूजा-भक्ति आदि विशेष कार्यक्रम सह मनाया जायेगा।

❀ **श्री परमागममंदिर-वार्षिक प्रतिष्ठा तिथि :**—फाल्गुन शुक्ला १३, ता. २२-३-२०२४ शुक्रवारके दिन श्री परमागममंदिरका ५१वाँ वार्षिक प्रतिष्ठा दिन श्री महावीर-कुन्दकुन्द दिगम्बर जैन परमागममंदिरमें पूजा-भक्तिके विशेष कार्यक्रम सह मनाया जायेगा।

श्री आदिनाथ जिनबिंब पंचकल्याणक महोत्सव अंतर्गत जम्बूद्वीपके १३० जिनेन्द्र भगवंत, प्रवचन मंडपमां बिराजमान होनेवाले श्री सीमंधर भगवान, श्री पार्श्वनाथ भगवान, श्री भावि भगवान तथा जिनमंदिरके उपरी भागमें विराजमान होनेवाले चार बालयति आदि भगवंतोंकी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा एवं श्री बाहुबली मुनीन्द्र प्रतिष्ठापन तथा महामस्तकाभिषेक आदि प्रसंग ता. १९ जनवरी से २६ जनवरी २०२४ तक 'न भूतो न भविष्यति' उक्तिको चरितार्थ करता हुआ ऐतिहासिक, अविस्मरणीय, भव्यातिभव्य हर्षोल्लास सह सानंद संपन्न हुए। जिसमें विद्वतगण और साधर्मीजन सम्मिलित हुए वे अपना अहोभाग्य मानते थे। इस पंचकल्याणकमें गर्भकल्याणकसे लेकर मोक्षकल्याणक तकके सभी प्रसंगोंको आधुनिक टेकनोलोजीके माध्यमसे अभी तक हुए पंचकल्याणकमें कभी नहीं दर्शाये गये ऐसी विशिष्टतासे दर्शाये गये थे। इस प्रतिष्ठामें अधिकतर पूज्य गुरुदेवश्री प्ररूपित तत्त्वज्ञानको ही परोसा गया था। जिसका विस्तृत विवरणके साथ 'प्रतिष्ठा समाचार विशेषांक'के रूपमें आगामी अंक (अप्रैल-२०२४)में प्रगट किया जायेगा।

आत्मधर्म के ग्राहकों के लिए

आत्मधर्मके सभी ग्राहकोंको विदित है कि हिन्दी आत्मधर्म प्रत्येक महिनेकी ५ तारीखको प्रकाशित किया जाता है और हमारी **website : www.kanjiswami.org** पर भी अपलोड किया जाता है। यदि आपको आत्मधर्म अंक डबल आते हो, बंद करना हो, एड्रेस बदल गया हो **whatsApp** से मंगवाना चाहते हो वे अपने **whatsApp**से निम्नोक्त विवरण दिये गये फोन पर बता सकते है।

email : contact@kanjiswami.org

(Mo) 9276867578 – Ashishbhai / (Mo) 9737154108 – Nirmalkumar

ग्राहक नं. ..... भाषा : हिन्दी

एड्रेस : _____

_____

गाँव/शहर _____

मोबाईल नं. _____ सही

मैं आत्मधर्म मंगवाना चाहता हूँ / बंद करना चाहता हूँ / **whatsApp** से मंगवाना चाहता हूँ। _____

संपादक, आत्मधर्म कार्यालय : श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (जि. भावनगर)

प्रौढ़के लिये दिये गये फरवरी-२०२४के प्रश्नोंके उत्तर

(१) चारित्र	(५) एक	(९) चार	(१३) अत्यंत	(१७) अनायतन
(२) एक	(६) पांच	(१०) मोक्ष	(१४) जघन्य	(१८) नोकर्म
(३) अनध्यवसाय	(७) आठ	(११) ग्रैवेयक	(१५) अतिचार	(१९) १४८
(४) एक साथ	(८) प्रशम	(१२) असंज्ञी	(१६) अपकर्षण	(२०) महाव्रत

बालकोंके लिये दिये गये फरवरी-२०२४ के प्रश्नोंके उत्तर

(१) भरत और बाहुबली दोनों भाई थे। — (१) अनंत

(२) बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ गिरनारसे मोक्ष प्राप्त हुए। — (२) जैन

(३) महावीर भगवान पावापुरीसे मोक्ष प्राप्त हुए। — (३) मनुष्य

(४) सोनगढमें ६३ फिट उन्नत मानस्तंभ है। — (४) स्मृति

(५) 'नमो अरिहंताणं' वह महामंत्र है। — (५) अनंत

(६) समयसार शास्त्रमें ५१४ गाथाएँ हैं। — (६) विकथा

(७) आत्मा ज्ञानस्वभावी वस्तु है। — (७) आठ

(८) जीवका मोक्ष वीतरागी रत्नत्रयसे होता है। — (८) मनुष्य

(९) पूज्य गुरुदेवश्रीका जन्म उमरालामें हुआ था। — (९) मनुष्य

(१०) दीपावलीके दिन भगवान महावीरका मोक्ष हुआ है। — (१०) दर्शन

(१२६)

प्रौढ व्यक्तियोंके लिए जानने योग्य प्रश्न तथा उत्तर

१. प्रश्न : जीव और द्रव्यमें क्या फर्क है ?

उत्तर : जीव कहते सिर्फ जीव द्रव्य ख्यालमें आता है और द्रव्य कहते छह द्रव्य ख्यालमें आते है।

२. प्रश्न : मोक्ष सुख कहा है ? उसे यहाँ भोग सकते हैं या नहि ?

उत्तर : मोक्षसुख आत्माकी शुद्ध पर्यायमें होता है और आत्मामें वह भोगा जा सकता है। मोक्षसुखका सम्बन्ध बाह्य क्षेत्रके साथ नहीं है ।

३. प्रश्न : प्रतिजीवी गुण और अनुजीवी गुण अर्थात् क्या ?

उत्तर : वस्तुका जो गुण दूसरेकी अभावकी अपेक्षा रखे उसे अर्थात् अभावसूचक गुणको प्रतिजीवी गुण कहते हैं और जो गुण दूसरोंकी अपेक्षा नहीं रखता अर्थात् भावसूचक गुणको अनजीवी गुण कहते हैं ।

४. प्रश्न : एकेन्द्रिय और निगोदमें क्या फर्क है ?

उत्तर : निगोदके सभी जीवोंको एकेन्द्रिय कहा जाता है लेकिन सभी एकेन्द्रिय जीवको निगोद नहीं कहा जाता ।

५. प्रश्न : छह द्रव्योंमेंसे खंड द्रव्य कितने है ?

उत्तर : छहों द्रव्य स्वयंरूपसे अखंड है और परसे पृथक् है । परमाणुके स्कंधको खंडरूप कहा जाता है, क्योंकि उस स्कंधमेंसे परमाणु पृथक् हो जाते हैं ।

६. प्रश्न : रूपी, अरूपी, मूर्तिक, अमूर्तिक उसमेंसे जीवको कौनसे विशेषण लागु पड़ते हैं ?

उत्तर : जीव अरूपी और अमूर्तिक है, जड़ वस्तुका रूप जीवमें नहीं है इसलिये अरूपी कहा जाता है लेकिन स्वयंके ज्ञान आदि अपेक्षासे तो वह स्व-रूपी है, जीवमें स्वयंका रूप है। ज्ञान-दर्शन आदि जीवका स्वरूप है ।

७. प्रश्न : बाह्यक्रिया और अभ्यंतर क्रिया अर्थात् क्या ?

उत्तर : वास्तवमें ज्ञानकी शुद्ध पर्याय वह आत्माकी अभ्यंतर क्रिया है और राग वह बाह्यक्रिया है, और उपचारसे राग वह अभ्यंतर क्रिया एवं शरीरादिकी क्रिया वह बाह्यक्रिया है ।

८. प्रश्न : चैतन्यकी क्रिया किसमें होती है और किसमें नहीं होती ?

उत्तर : चैतन्यकी क्रिया आत्मामें होती है और जड़में नहीं होती ।

९. प्रश्न : धर्मद्रव्य अर्थात् क्या ?

उत्तर : जो द्रव्य स्वयं गति करते जीव और पुद्गलको उदासीन निमित्त है उसे धर्मद्रव्य कहते हैं ।

१०. प्रश्न : मछलीको गमन करनेमें पानी निमित्त होता है तो पानी धर्मद्रव्य है या नहीं ?

उत्तर : पानी धर्मद्रव्य नहीं है, क्योंकि पानी तो रूपी वस्तु है, रूपीपना वह पुद्गलका गुण है।

धर्मद्रव्य तो अरूपी है।

११. प्रश्न : पुद्गल द्रव्य किस गुण द्वारा जानता है और किस गुणसे जाननेमें आता है ?

उत्तर : पुद्गल द्रव्य जड है इसलिये उसमें जाननेकी शक्ति नहीं है, वह प्रमेयत्वगुणके कारण जीवको जाननेमें आता है।

१२. प्रश्न : अगुरुलघुत्वगुण स्वयंको प्रगट है या नहि ?

उत्तर : अगुरुलघुत्वगुण दो जातिके हैं, एक अनुजीवी और दूसरा प्रतिजीवी। उसमेंसे अनुजीवी अगुरुलघुत्वगुण तो सामान्य होनेसे सभीको प्रगट होता है, लेकिन प्रतिजीवी अगुरुलघुत्वगुण वह जीवद्रव्यका विशेष गुण है, हमें वह गुण अभी प्रगट नहीं है, सिद्धदशामें वह गुण प्रगट होता है।

१३. प्रश्न : साता और असाताके उदयके अभावसे जीवको कौनसा गुण प्रगट होता है ?

उत्तर : अव्याबाध गुण प्रगट होता है।

१४. प्रश्न : सिद्धको साता होती है या नहीं ?

उत्तर : सिद्धको साता-असाता दोनोंमेंसे एक भी नहीं होती, उन्हें पूर्ण आत्मिक सुख होता है।

'आत्मधर्म' (हिन्दी)के स्वामित्वका विवरण

फोर्म नं. ४, नियम नं. ८

समाचार पत्रिकाका नाम	:	आत्मधर्म
प्रकाशन तारीख	:	हर मासकी पाँचवीं तारीख
प्रकाशक एवं मुद्रकका नाम-पता	:	नविन पोपटलाल शाह, ७०१-७०२, आविष्कार टावर, चंदावरकर क्रोस रोड, बोरीवली (वेस्ट) मुंबई
राष्ट्रियता	:	भारतीय
प्रकाशनस्थान	:	श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, मु. सोनगढ, ता. शिहोर, जि. भावनगर
स्वामित्व	:	श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ-३६४२५०
सम्पादक	:	रमेशचंद्र व्रजलाल शाह, सोनगढ
मुद्रणस्थान	:	स्मृति ऑफसेट, १३-कहानवाडी, अंकुर स्कूल रोड सोनगढ-३६४२५०

मैं हसमुखभाई पोपटलाल वोरा एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वासके अनुसार उपर्युक्त विवरण सत्य है।

ता. १-३-२०२४ निवेदक : हसमुखभाई पोपटलाल वोरा,

अध्यक्ष : श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ-३६४ २५०

(१२६)

छोटे बच्चोंके लिए प्रश्नोत्तर

नीचे दिये गये प्रश्नोंके छहढालाकी तीसरी ढालमेंसे मिलेंगे।

(१) सुखस्वभावी आत्माको जानते ..... होता है।

(२) ..... ही आत्माके अतीन्द्रिय सुखको जानता है।

(३) सम्यक्दर्शनादि अनंत आनंदमय रत्न चैतन्यके ..... खोदने पर उसमेंसे निकलेंगे।

(४) ज्ञानीके ज्ञानमें ..... नय होते हैं।

(५) स्वद्रव्यके ..... त्वरित हो।

(६) आत्माके अनुभवसे ही ..... मार्गका प्रारंभ होता है।

(७) व्यवहार मोक्षमार्ग उपचारसे ..... का कारण है।

(८) वीतराग विज्ञान ही ..... का साधन है।

(९) ..... नयके आश्रयसे मुनिवर मोक्षको साधते हैं।

(१०) ..... में हजारों शास्त्रोंका भंडार भरा पड़ा है।

(११) भगवान सिद्ध और अरिहंत ..... साधन बिना ही आत्माके आनंदका अनुभव करते हैं।

(१२) सुखस्वरूपी आत्मामें ..... को जोड़ते सुख होता है।

(१३) ..... सम्यक्त्व वह सिद्धदशामें कायम रहता है।

(१४) नवतत्त्वको जाने लेकिन शुद्धात्माको न पहिचाने उसे ..... नहीं होता है।

(१५) मोक्षशास्त्रकी संस्कृत भाषामें ..... ने रचना की है।

(१६) भूतार्थ स्वभावके आश्रयसे सम्यग्दर्शन समयसारकी ..... गाथामें कहा है।

(१७) ज्ञानचेतनाकी अनुभूति वह ..... आत्माका लक्षण है।

(१८) अविरत सम्यक्दृष्टिको ..... कर्मप्रकृतिका बंध नहीं होता है।

(१९) वीतरागी देव कौन? (१) ..... (२) .....

(२०) निर्ग्रंथ गुरु कौन? (१) ..... (२) ..... (३) .....

पूज्य गुरुदेवश्रीके हृदयोद्‌गार

• ध्रुवधामरूपी ध्येयके ध्यानकी प्रचंड धूनी-उत्साह व धैर्यसे धूनना–ऐसे धर्मका धारक धर्मी धन्य है।६११।

• जाननक्रिया तो निजस्वरूप है, कारण कि उसीसे आत्मा जाना जाता है; अतः आत्मा उसीके आधारसे अवस्थित है।६१२।

• ज्ञानके अभ्याससे भेदज्ञान होता है व भेदज्ञानके अभ्याससे केवलज्ञान होता है।६१३।

• पर्यायमें द्रव्यका ज्ञान आता है, परन्तु द्रव्य नहीं आता और द्रव्यमें पर्याय नही आती; और द्रव्य है इसलिए उसका ज्ञान होता है–ऐसा भी नहीं है। पर्याय, निजस्वरूपमें रहकर ही द्रव्यका ज्ञान करती है।६१४।

• श्रुतज्ञानका अंश ही शुद्धनय है। वह जिसके आश्रयसे प्रकट होता है उस स्वभावको भी शुद्धनय कहते हैं तथा उसके फलस्वरूप केवलज्ञानको भी शुद्धनय कहते हैं।६१५।

• ज्ञानीको प्रत्येक समय अपने से ही हुए ज्ञेय-सम्बन्धी ज्ञानकी प्रसिद्धि की मुख्यता है; ज्ञेयकी (प्रसिद्धिकी) मुख्यता नहीं। अहा! ज्ञान तो ज्ञानको ही प्रसिद्ध करता है, परन्तु ज्ञेय भी ज्ञानको ही प्रसिद्ध करता है–यह सत्‌की पराकाष्ठा है।६१६।

• अभेदके अनुभवमें भेद नही दिखता और यदि भेद दिखे तो अभेदका अनुभव नहीं रहता।६१८।

• अहिंसा–(शुद्ध आत्माके आश्रयपूर्वक) रागकी उत्पत्तिका न होना।

सत्य–सत्‌-स्वरूपी आत्माका आश्रय करना।

अचौर्य–जो किसीका ग्रहण अथवा पकड़ न करे ऐसे अचौर्यस्वरूप आत्माका आश्रय होना।

ब्रह्मचर्य–ब्रह्मस्वरूपके आश्रयसे वर्तमानमें होनेवाली वीतरागी आनन्द-पर्याय।

अपरिग्रह–जिसे पर्यायका भी परिग्रह नहीं ऐसे त्रिकाल अपरिग्रह-स्वरूप भगवान आत्माका अवलम्बन लेना। - यही निश्चय पंच महाव्रत है। (व्रत-स्वभावको लिपटना) ६१९।

३६
आत्मधर्म
मार्च-२०२४
अंक-७ ● वर्ष-१८

Posted at Songadh PO
Publish on 5-03-2024
Posted on 5-03-2024

Registered Regn. No. BVR-368/2024-2026
Renewed upto 31-12-2026
RNI Registration No. GUJHIN/2006/18882
वार्षिक शुल्क 9=00 आजीवन शुल्क 101=00

Printed & published by Navin Popatlal Shah on behalf of shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust and Printed at Smruti Offset, 13, Kahanwadi, Ankur School Road At-Songadh Pin-364250 and published from Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust At-Songadh, Ta. sihor, Dist. Bhavnagar Pin-364250.

Editor : Rameshchandra Vrajlal Shah.

If undelivered Please return to :—
Shri Dig. Jain Swadhyay Mandir Trust
SONGADH-364 250 (INDIA)
Phone No. (02846) 244334
Fax (02846) 244662

www.kanjiswami.org
email : contact@kanjiswami.org